वर्ष ४१] * * * [अङ्क ६

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़ २०२४, जून १९६७

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ८.५० विदेशमें १५.६० (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्र[ति] भारतमें ५० [पैसे] विदेशमें ८० [पैसे] (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

महाभावरूपा श्रीराधा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥

वर्ष ४१ | गोरखपुर, सौर आषाढ २०२४, जून १९६७ | संख्या ६ पूर्ण संख्या ४८७

महाभावरूपा श्रीराधा

दुर्लभ परम त्यागमय पावन प्रेम-मूर्ति आदर्श महान ।
महाभावरूपा श्रीराधा, जिनके प्रेमवश्य भगवान ॥
नहीं तनिक भी स्व-सुख-वासना, नहीं मोह-माया-मद-मान ।
प्रियतम-पद पूर्णार्पित जीवन, जगके सारे द्वन्द्व समान ॥
मुक्ति-बन्ध, वैराग्य-भोगके ग्रहण-त्यागका कभी न ध्यान ।
प्रियतम-सुख ही सब कार्योंमें करता नित्य प्रेरणा-दान ॥
प्रेममयी शुचितम श्रीराधाके पद-रज-कण रसकी खान ।
वे स्वीकार करें इस जन नगण्यके नमस्कार निर्मान ॥

कल्याण

याद रक्खो—तुम सबसे पहले स्वरूपतः नित्य एक आत्मा हो, फिर मनुष्य हो, फिर भारतवासी हो, फिर हिंदू हो, फिर अमुक-प्रदेशवासी हो, फिर अमुक-भाषा-भाषी हो, फिर अमुक-स्थानवासी हो, फिर अमुक परिवारके सदस्य हो, फिर माता-पिता, पत्नी-पति, पुत्र-पौत्र, स्वामी-सेवक आदि कुछ हो।

याद रक्खो—आत्माके अतिरिक्त ये सभी स्वरूप तुम्हारे यथार्थ स्वरूप नहीं हैं। ये तो अनित्य संसारके अनित्य क्षेत्रोंमें कामचलाऊ नाम-रूप हैं। इन सबमें यथायोग्य व्यवहार करके जीवन-यात्रा चलानी है। पर यह सदा ध्यान रखना है कि अपने इन विभिन्न नाम-रूपोंके अभिमानमें मनुष्येतर प्राणियोंको, भारतके अतिरिक्त अन्यान्य-देशवासियोंको, हिंदूके अतिरिक्त अन्यान्य-धर्मजातिवालोंको, अपने प्रदेशके अतिरिक्त अन्यान्य-प्रदेशवासियोंको, अपनी भाषाके अतिरिक्त अन्यान्य-भाषा-भाषियोंको, अपने नगर-गाँवके अतिरिक्त अन्यान्य-स्थाननिवासियोंको, अपने परिवारके अतिरिक्त अन्यान्य परिवारोंके सदस्योंको, अपने सिवा अन्य सबको तुम 'पर' कहीं न समझ बैठो और कहीं अपने कल्याणके मोहमें दूसरोंका अकल्याण चाहने और करने न लग जाओ।

याद रक्खो—किसी भी दूसरेका अकल्याण या अहित अपना ही अकल्याण या अहित है—वैसे ही, जैसे अपने एक ही शरीरके विभिन्न अङ्ग अपना ही शरीर हैं। किसी भी अङ्गपर चोट पहुँचाना अपने ही शरीरको चोट पहुँचाना है और कहीं भी चोट लगनेपर उसके दर्दका अनुभव अपनेको ही होता है। इसी प्रकार एक ही आत्माके ये सब विभिन्न नाम-रूप हैं। इनमें कोई भी कभी भी न तो 'पर' (दूसरा) है और न दूसरा हो सकता है।

याद रक्खो—इससे भी महत्त्वकी बात यह है कि आत्मारूपमें स्वयं श्रीभगवान् ही प्रकाशित हैं। साथ ही चेतन आत्माके अतिरिक्त जड प्रकृतिके रूपमें भी उन्हीं-की मङ्गलमयी लीला प्रकाशित है, जो उन लीलामयसे सदा सर्वथा अभिन्न है। अतएव जड-चेतन जो कुछ भी है—सभी श्रीभगवान् ही हैं। वे ही लीलामय विभिन्न नाम-रूप धारण करके लीला कर रहे हैं। यदि तुम भक्त हो—या बनना चाहते हो, अथवा एकमात्र सत्यके अन्वेषक हो तो तुम्हें सदा-सर्वदा सभी नाम-रूपों-में एकमात्र भगवान्‌को ही प्रकट समझकर सदा सभीका हित, सभीका कल्याण चाहना-करना चाहिये।

याद रक्खो—किसी भी प्राणीका असत्कार करना, किसीका अहित करना, किसीको भी दुःख पहुँचाना अपने परमाराध्य भगवान्‌का ही असत्कार-अहित करना है और भगवान्‌को ही दुःख पहुँचाना है। और यह महापाप है, अतएव इससे सदा बचे रहो। सदा सावधानीके साथ इस प्रकारकी कोई भी चेष्टा कभी मत करो।

याद रक्खो—जो समस्त नाम-रूपोंवाले प्राणियोंमें भगवान्‌को देखकर सदा-सर्वदा सबका सम्मान करता है, सबकी सेवा करता है, सबको सुख पहुँचाता है और सबका हित करता है, उसके द्वारा सदा भगवान् ही सम्मानित, सेवित, सुखी होते हैं और हित प्राप्त करते हैं। वह सदा भगवान्‌की ही पूजा करता है। भगवान् उसकी इस नित्यपूजासे परम प्रसन्न होकर उसे अपना स्वरूपदान देते हैं।

याद रक्खो—यदि सबमें अपने आत्माको समझकर सबका सम्मान, सेवा, हित करते हो, सबको सुख पहुँचाते हो, तब तो सदा ही आत्मसंतुष्टि प्राप्त होती रहती है और सदा ही आत्मरमण करते हुए तुम अपने स्वरूपमें स्थित रहते हो।

'शिव'

भविष्यके विषयमें संकल्प भावी जन्मका कारण होता है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके उद्गार)

भगवान्‌का विधान मङ्गलकारक है

जो लोग वृथा संकल्प करते रहते हैं, उनके संकल्प सत् नहीं होते। संकल्पके विषयमें एक रहस्यकी बात यह है कि जो मनुष्य अपना कल्याण चाहते हैं, उनको भविष्यका कोई भी संकल्प नहीं करना चाहिये। भविष्यके लिये किया हुआ संकल्प भावी जन्मका कारण होता है। आपके मनमें यह संकल्प हुआ कि मैं कल कलकत्ते जाऊँगा और किसी कारणसे आज आपकी मृत्यु हो गयी तो फिर आपको उस संकल्पके कारण दूसरा जन्म लेकर कलकत्ते जाना पड़ेगा। इसलिये कल्याणकामी मनुष्यको यही समझना चाहिये कि मुझको कुछ भी नहीं करना है। जो कुछ हो रहा है, उसे देखते रहना चाहिये। एक क्षणके बाद मुझे यह काम करना है, यह संकल्प भी नहीं करना चाहिये। यदि कहा जाय कि 'ऐसा संकल्प न करनेसे कार्य कैसे होगा ? भोजन करना है, नीचेसे ऊपर जाना है, ऊपरसे नीचे उतरना है, इसके लिये पहले तो मनमें संकल्प होगा ही, तभी उसके अनुसार क्रिया होगी।' यह कहना ठीक है ? पर इस विषयमें विकल्पसहित ही संकल्प करना चाहिये। विकल्प-सहितका अभिप्राय यह है कि जैसे ऊपर जानेकी आवश्यकता है, यह ठीक है; पर ऊपर जाना बन जाय तो बन जाय, न बने तो न बने। भोजन करनेका समय हो गया तो भोजनके लिये वहाँसे चल दिये। भोजन मिल गया तो खा लिया, नहीं तो नहीं। कोई संकल्प नहीं। एक लक्ष्यको रखकर चलना है, साथमें उस संकल्पके साथ यह विकल्प है—'हो जाय तो अच्छी बात है; न हो तो अच्छी बात है। अमुक काम करनेका विचार है, कोई निश्चय नहीं। जो कुछ बन जाय, वही सत्य है।' किसीने पूछा कि 'अब आपको क्या करना है ?' तो भीतरसे यह आवाज आनी चाहिये कि 'कुछ भी करना नहीं है।' जैसे महात्मा—कृतकृत्य पुरुषको तो कुछ करना शेष रहता ही नहीं, वैसे ही साधक पुरुषको भी अपने हृदयमें यह भाव रखना चाहिये कि मुझे कुछ करना नहीं है। वर्तमानमें जो भजन-ध्यान हो रहा है, वह वर्तमान क्रिया ही हो रही है, भविष्यके लिये नहीं। वर्तमान क्रियामें जो साधन चल रहा है, उसके विषयमें उसकी यही समझ है कि होनी चाहिये 'ऐसी अवस्थामें प्राण चले जायँ तो कोई हर्ज नहीं है। भविष्यमें तो मेरे लिये कुछ करना शेष है नहीं। जो कुछ हो रहा है, परमात्माकी इच्छासे हो रहा है। जो भी हो रहा है, सब ठीक हो रहा है। मेरे द्वारा जो कुछ हो रहा है, वह भी परमात्माकी इच्छासे हो रहा है। परेच्छा, अनिच्छासे जो हो रहा है, वह भी परमात्माकी इच्छासे हो रहा है, मुझको तो कुछ करना है ही नहीं। मेरे द्वारा भी जो कुछ भी परमात्मा करवा रहे हैं, वह मेरे लिये मङ्गलकी बात है। उनकी जैसी इच्छा हो, करवायें। मुझे तो कुछ भी करना है नहीं।' मनमें ऐसा निश्चय रक्खे कि 'जो कुछ हो रहा है, सब स्वाभाविक ही हो रहा है। परमात्मा करवा रहे हैं, उनकी मुझपर दया है।' इस प्रकारसे निश्चिन्त होकर रहे। जैसे कोई मनुष्य टिकट खरीदकर गठरी-मोटरी लिये ट्रेनपर बैठनेके लिये तैयार है और ट्रेनकी बाट देख रहा है, इसी प्रकारसे मनुष्यको समस्त कार्योंसे निपटकर मृत्युकी प्रतीक्षा करते रहना चाहिये। यह बहुत ही उत्तम भाव है। महात्मा पुरुषका जो स्वाभाविक भाव है, साधकके लिये वही साधन है।

अतः मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि परमात्माको आत्मसमर्पण करके यह निश्चय रक्खे कि परमात्मा मेरे द्वारा जो करवा रहे हैं सो ठीक करवा रहे हैं; जो कुछ अनिच्छा-परेच्छासे हो रहा है, ठीक हो रहा है। ऐसा भाव रक्खे कि भगवान्‌का जो विधान है, वह वास्तवमें न्याय है और मेरे लिये मङ्गलकारक है। साधकका यह भाव उच्चकोटिका है।

अनिच्छासे जैसे किसीका लड़का मर गया, शरीरमें रोग हो गया, घरमें आग लग गयी तो बहुत आनन्दकी बात है। इसके विपरीत लड़का पैदा हो गया, घरमें लाख रुपये आ गये या शरीर स्वस्थ हो गया—तब भी आनन्दकी बात है। चाहे कोई मान करे या अपमान, निन्दा करे या स्तुति—दोनोंमें तनिक भी अन्तर नहीं। जैसी निन्दा, वैसी ही स्तुति। जैसा मान, वैसा ही अपमान। जैसा मित्र, वैसा ही शत्रु और जैसा सुख वैसा ही दुःख। इस प्रकार जिनका सर्वत्र समभाव है, वे ही पुरुष-श्रेष्ठ हैं। ऐसे महात्माके जो लक्षण शास्त्रोंमें बताये गये हैं, उनको लक्ष्य बनाकर जो अभ्यास करता है, वह शीघ्र महात्मा बन जाता है। यह बड़ी मूल्यवान् वस्तु है। महात्मामें तो यह स्वाभाविक है, साधकके लिये आदर्श साधन है। जो मनुष्य साधन मानकर इस प्रकार अभ्यास करता है, वह आगे चलकर शीघ्र ही महात्मा बन जाता है। किसी आदमीने गाली दी तो आनन्द; प्रशंसा की तो आनन्द; उनमें किंचित् भी भेद न समझे। यों समझे कि निन्दा-स्तुति दोनों ही वाणीके विषय हैं—आकाश-के गुण हैं, शब्दमात्र हैं। इनमें भला और बुरा क्या है? निन्दा और स्तुति होती है नामकी। मैं नामसे रहित हूँ। मान-अपमान होता है रूपका—देहका, मैं इस रूप या देहसे सर्वथा पृथक्—रहित हूँ। न मेरा मान है, न मेरा अपमान है; न मेरी निन्दा, न मेरी स्तुति। इनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकारका ज्ञान आत्माका कल्याण करनेवाला है।

(संग्रहकर्ता और प्रेषक श्रीशालिगराम)

मनन-माला

(लेखक—ब्र० श्रीमगनलाल हरिभाई व्यास)

[गतवर्ष पृष्ठ १०९१ से आगे]

५०—चित्त आत्माके नामसे तथा शरीरके नामसे अनेक प्रकारकी इच्छाएँ करता है और कर्म भी शरीरसे करता है। आत्मा सदा मुक्त है और आत्मा कोई कर्म नहीं करता और न कोई भोग भोगता है। आत्मा शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदिसे असङ्ग है; अतएव आत्माके लिये चित्त जो करनेके लिये कहे, उसे न करे। वस्तुतः चित्तको कुछ करना-कराना नहीं रहता। आत्मा नित्य है और मुक्त है, सुख-दुःखसे रहित है और शरीरको मृत्यु-पर्यन्त अपना प्रारब्ध भोगना है, फिर चित्तको करना क्या है? चित्तको शरीरकी प्रकृतिके अनुसार इच्छामात्रसे रहित होकर अपना अभिनय करना है और आत्मा उसका साक्षी है। मैं साक्षी आत्मा हूँ—कर्त्ता नहीं हूँ, भोक्ता भी नहीं हूँ। जन्म-जरा और मरणसे रहित, नित्य हूँ—इस प्रकारका चिन्तन करता रहे।

५१—हम शरीर बनकर कर्म करते हैं, ऐसा न मानकर आत्मा रहकर शरीरके द्वारा शरीरकी प्रकृतिके अनुसार अभिनय करना है और वह भी असङ्ग बुद्धिसे। लाभ-हानि, हर्ष-शोक, सुख-दुःख—सबमें समानचित्त रहकर प्रकृतिके अनुसार कर्म करते जाओ।

५२—मैं आत्मा हूँ—शरीर, इन्द्रिय, मन या बुद्धि नहीं हूँ; इन सबसे असङ्ग हूँ। इस अभ्यासको सिद्ध करनेके लिये पहले सब प्रकारकी चिन्ताका त्याग करो। प्राणीमात्रको मुख्यतः दो प्रकारकी चिन्ता होती है—मेरे और मेरे सम्बन्धीकी क्या हालत होगी? इस चिन्तासे मन घिरा रहता है; इसलिये मनको निश्चयपूर्वक बतलाये कि सबको सबके प्रारब्धके अनुसार जो होनेवाला होगा, वह होगा। चिन्ता करनेसे उसमें कोई अन्तर नहीं पड़नेवाला है। तुम्हारा जो कर्तव्य-कर्म है, उसे किये जाओ। बाकी जो होनेवाला होगा, वह होगा—ऐसा समझकर चिन्ताविहीन और अशान्तिरहित हो जाओ। जलन और चिन्ता करनेसे क्या काम बनेगा? शास्त्र शरीरसे स्वकर्म करनेका निषेध नहीं करता। चिन्ता और उद्वेगरहित होकर प्रसन्न मनसे स्वकर्म करते जाओ; जो तुमसे शान्त मनसे करते बने, वह करो। पर चिन्ता और उद्वेग न करो; क्योंकि इसका कुछ फल ही नहीं है।

दूसरी चिन्ता यह होती है कि शरीरपात होनेके उप-रान्त मेरा क्या होगा। ज्ञान और स्व-स्वरूपके स्मरणके बिना इस चिन्ताका शमन नहीं होता। मैं आत्मा हूँ, मैं

कभी जन्मा नहीं, कभी बद्ध नहीं हुआ, मैं मरनेवाला नहीं हूँ। जन्म-वृद्धि, जरा और मृत्यु तो शरीरके होते हैं और मैं तो इन सबसे असङ्ग आत्मा हूँ—यह स्मरण नित्य बारंबार करते रहनेसे ही चिन्ता मिटती है। चिन्ताको दूर करनेका इसके सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

५३—मैं आत्मा हूँ और मैं कर्ता या भोक्ता नहीं हूँ—ऐसा निश्चय करके आत्माके नामपर चित्त कर्त्तापनको करता है और भोगोंकी इच्छा करके भोग भोगता है और नाम लगाता है आत्माका। चित्तके इस सारे करतबको बंद करना है। इस कारण प्रयत्नपूर्वक सब भोगोंकी इच्छाका त्याग करे। भोगकी इच्छाका त्याग किये बिना, और 'मैं अकर्ता हूँ—' इसका सतत भान रक्खे बिना, 'मैं आत्माके रूपमें सदा मुक्त ही हूँ'—इस मुक्तिका अनुभव चित्त नहीं होने देगा। अतएव भोगकी इच्छामात्रका त्याग करे और मैं कर्त्ता नहीं हूँ, बल्कि मैं साक्षी आत्मा हूँ—यह सदा ध्यानमें रक्खे।

५४—परमात्मा सबमें है और वह सबमें रहनेवाला परमात्मा आत्मा कहलाता है। अतएव सबमें जो आत्मा है, वह परमात्मा स्वयं ही आत्मारूप बना है। परमात्मा सबमें है और सर्वत्र है। जैसे जल जमीनके भीतर है, परंतु जमीनको खोदनेसे मिलता है, उसी प्रकार परमात्मा सर्वत्र है, परंतु वह श्रद्धायुक्त भक्तिसे ही प्रकट होता है। जैसे काठमें अग्नि है, दूधमें घी है, परंतु वह सहज ही प्रत्यक्ष नहीं दीखता, बल्कि युक्तिपूर्वक मथनेसे प्राप्त होता है; उसी प्रकार परमात्मा सबमें और सर्वत्र है, परंतु वह श्रद्धापूर्वक भक्ति किये बिना प्रकट नहीं होता, अनुभवमें नहीं आता। वह सबमें और सर्वत्र है; इसलिये जिसमें श्रद्धा बैठे, उस मूर्त्तिको या व्यक्तिको परमात्मस्वरूप जानकर भक्ति करे। यों करनेसे वह प्रकट होगा।

५५—इसी कारण मूर्त्तिपूजा सुगम है। परमात्माकी मूर्त्ति तो है ही नहीं। तथापि साकार मूर्त्तिमें वह व्यापक है। जहाँ देखो, वहाँ परमात्मा है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ वह न हो। ऐसी कोई चीज नहीं, जिसमें वह न हो। उसके बिना जगत्‌का अस्तित्व ही नहीं है। अर्थात् परमात्मा स्वयं जगद्रूपमें दीखता है। आत्माकी मुक्तिका प्रश्न ही नहीं है। वह तो सदा मुक्त है ही। उसको जन्म-जरा, मृत्यु और विकार—इनमेंसे कुछ भी नहीं होता। प्रयत्न करना है तो केवल मनको; चित्तको शान्त करनेका—चित्तको संकल्परहित, वासनारहित करके परमात्मामें मिला देनेका। और इसीका नाम विदेहमुक्ति है। चित्त (सूक्ष्म शरीर) के ही एक देहसे दूसरे देहमें जानेका नाम संसार है। चित्त ही इच्छा और कर्म करता है। सुख-दुःखको चित्त ही भोगता है। यह चित्त जबतक देह है, तबतक शान्त-संकल्प और वासना-विहीन रहे तथा शरीरसे बिना आसक्ति और आग्रहके, शरीरकी प्रकृतिके अनुसार कर्म करे तथा फलकी इच्छाका त्याग करे तो उसको जीवन्मुक्तिका अनुभव होता है। श्रेयकी साधना करनेवाला भी चित्त ही है। अतएव चित्त इस शरीरसे क्या करे—इसका विचार करना चाहिये।

५६—इस लोक और परलोकके सारे लोकोंमें दुःख भरा है। देह चाहे लौकिक हो या पारलौकिक, वह विकारी और विनाशशील है—ऐसा निश्चय करके इस लोक और परलोकके भोगोंकी इच्छामात्रका त्याग करके, परमात्मा जो घट-घट व्यापक है; उसका नित्य भजन, चिन्तन और स्मरण करे तथा शरीरसे जो कुछ करना हो, वह परमात्माकी प्राप्तिके लिये करे। परमात्माके सिवा दूसरी किसी वस्तुकी इच्छा न करे।

५७—इसके लिये शरीरकी प्रकृतिके अनुसार जो कुछ कर्म हो, उसको कर्तव्य समझकर आसक्तिरहित और बिना फलकी इच्छाके करता रहे। ऐसा करनेसे चित्त शान्त होकर परमात्मामें समयानुसार लीन हो जायगा।

५८—फिर मनमें यदि ऐसा हो कि कर्म ही न करूँ, तो इसके लिये दो विचार करे। एक तो यह है कि कर्म किये बिना हठपूर्वक कदाचित् स्थूलशरीर तो कुछ समय बैठा रह सकता है, पर चित्त तो बेकार क्षणभर भी नहीं बैठ सकता, और स्थूलशरीरको हठपूर्वक शान्त रखकर मनसे संकल्प-विकल्प करते रहनेका कोई अर्थ ही नहीं है। यदि कुछ आवश्यक है तो चित्तको शान्त करना आवश्यक है। जो चित्तका किया होता है, वही किया हुआ माना जाता है। बाकी जिस कर्ममें चित्तकी आसक्ति, आग्रह या फलकी इच्छा नहीं होती, वैसे शरीरद्वारा किये हुए कर्म चित्तको बन्धनमें नहीं डालते। कर्ममात्रका कर्ता तो प्रकृतिरूप यह शरीर है और शरीर विभिन्न प्रकृतिके बने होते हैं। जैसे गत युद्धमें जर्मन लोगोंने यह निश्चय किया था कि मनुष्यके शरीरके रक्तकी छः जातियाँ हैं। सारांश यह है कि मनुष्यका रक्त इन छः जातियोंमेंसे मुख्यतः किसी एक

जातिका होता है। इसी प्रकार शास्त्रोंने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक मनुष्य चार जातिमेंसे किसी एककी प्रकृतिका होता है। जैसे एक जातिका रक्त दूसरी जातिके रक्तवाले मनुष्यमें डाला जाय तो वह दुःखद या घातक हो जायगा, उसी प्रकार एक प्रकृतिका मनुष्य यदि अपनी प्रकृतिके विरुद्ध कर्म करे तो वह दुःखको प्राप्त होता है। अतएव सबको अपने शरीर और मनकी प्रकृतिका निश्चय करके तदनुकूल कर्म करना चाहिये, तभी सुख-शान्ति और आनन्द होगा।

५९–मनुष्य माने या न माने; परंतु जो अपना शरीर है, वह त्रिगुणात्मक प्रकृतिका ही बना हुआ है और इसके अनेक भेद हो सकते हैं, परंतु मुख्यतः चार भेद शास्त्रोंमें लिखे हैं—वे प्रकृतिके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। सात्त्विक गुणप्रधान ब्राह्मण है; जिसमें सत्त्व प्रधान और रजोगुण गौण हो, वह क्षत्रिय है; जिसमें रजोगुण मुख्य और तमोगुण गौण हो, वह वैश्य है तथा तमोगुण प्रधान शूद्र है। प्रकृतिके अनुसार काम करनेसे मन क्षोभरहित और शान्त रहता है और प्रकृति-विरुद्ध कर्म करनेसे मनमें सदा क्षोभ रहता है।

६०–कर्मको लेकर मनुष्य उच्च-नीच नहीं होता क्योंकि सबके भीतर प्रभु समानरूपसे विराज रहे हैं। मनुष्य किस प्रकार कर्म करता है, इसे देखकर उसकी अच्छाई-बुराई जानी जाती है। अपने कर्तव्यरूपमें, आसक्ति और आग्रह छोड़कर तथा फलकी इच्छाके बिना, प्राणिमात्रमें अवस्थित परमेश्वरके प्रीत्यर्थ जो कर्म किया जाता है, उस कर्मका कर्त्ता सदा श्रेष्ठ होता है—फिर चाहे वह भंगीका काम करता हो, खेती करता हो या राज्य करता हो, अथवा उपदेशका काम करता हो। कर्म ऊँचा-नीचा नहीं होता, उसका भाव ऊँचा-नीचा होता है। शुद्धभावसे परमात्माकी सेवाके रूपमें जो कर्म होता है, उसका कर्त्ता सदा श्रेष्ठ है। इस जगद्रूपी नाटकमें चारों वर्णरूपी पात्रोंकी आवश्यकता है। प्रत्येक मनुष्य इस जगद्रूपी नाटकका पात्र है। सब पात्रोंको आसक्ति, अहंता और फलेच्छासे रहित होकर अपना अभिनय करके जगन्नाटक-के स्वामीको प्रसन्न करना है। अतएव अभिनयका जो पार्ट मिला है, उसको ऊँचा-नीचा न समझकर अच्छी रीतिसे अभिनय करना और अभिनय करते समय यह सदा स्मरण रखना कि इस अभिनयसे पृथक् मैं आत्मा हूँ—इसीका नाम योग है।

६१–अपने प्राप्त कर्मको करते हुए चित्तमें विकार न आने दे। शीत-उष्ण, मान-अपमान, जय-पराजय, हर्ष और शोकके प्रसङ्गमें मनको सदा शान्त और निर्विकार रक्खे। जिसका चित्त सदा विकाररहित, शान्त और एक रस रहता है, वह जीवन्मुक्त है। विकार उत्पन्न होनेवाले प्रसङ्गोंमें भी चित्तको निर्विकार रखना ही जीवनका ध्येय है। और यही जीवन्मुक्तिका सच्चा अभ्यास है।

६२–सबमें परमात्मा है, परमात्मामें सब है, परमात्मा ही सर्वरूप हो रहा है—ये तीनों निष्ठाएँ जीवन्मुक्तिके अभ्यासके लिये आवश्यक हैं और ये तीनों ही सत्य हैं। मेरे साथ-साथ यह सब कुछ परमात्म-स्वरूप है, इस अभ्यासमें उपर्युक्त तीनों अभ्यास सम्मिलित हैं। अतएव यह अभ्यास नित्य करे, यह सबमें श्रेष्ठ साधन है। जो कुछ अनुभवमें आता है, वह सब परमात्मस्वरूप है—यह परम सत्य सिद्धान्त है, इसको अनुभवमें लानेका प्रयत्न करनेका नाम ही सच्चा योगाभ्यास है। जिससे सब परमात्मस्वरूपमें अनुभूत होते हैं, वह सच्ची ज्ञान-निष्ठा है। परमात्माके सिवा दूसरा कुछ सत्य है ही नहीं और जो कुछ भासता है, उसे मृग-मरीचिकाके जलके समान मिथ्या समझे। परमात्मा सत्य है, वह तीनों कालमें अबाधित, एक, अखण्ड, अजर, अमर और सर्वव्यापक है और इसके सिवा उसमें जो कुछ भासता है, वह मिथ्या है। यह चिन्तन सदा करता रहे।

६३–परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, सर्वशक्तिमान् है—यह सभी कहते हैं। यदि परमात्मा सर्वत्र है तो जगत् कहाँ है? जहाँ जगत् होता है, वहाँ परमात्मा नहीं होता और जहाँ परमात्मा होता है, वहाँ जगत् नहीं होता। एक ही जगहमें दो वस्तुएँ नहीं हो सकतीं। तथापि जो दीखता है, वह दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान, पानीमें छायाके समान, मरुभूमि-में जलके समान तथा जादूगरके झूठे रुपयेके समान मिथ्या दीखता है। इसी प्रकार परमात्मा सत्य है, सर्वत्र है और उसमें यह जगत् मिथ्या भासता है—इस सत्यको जानकर चित्तको सदा अविकारी और शान्त रखकर शरीरसे कर्तव्य कर्म करता रहे और आसक्ति, आग्रह तथा फलेच्छा-का त्याग करे।

६४–परमात्मा सर्वत्र है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान् है, वह सब प्राणियोंका अकारण सुहृद् है और वह परमात्मा ही मेरा वास्तविक स्वरूप है। वही प्राणिमात्रका अन्तरात्मा

है, और वह आत्मा मैं हूँ। यह जान लेनेपर भी मन अनेक जन्मोंके संस्कारोंके कारण इसे मानता नहीं, बुद्धि इसे स्वीकार नहीं करती। हम कैसे हैं? गीता कहती है—जैसी श्रद्धा, वैसा स्वरूप। हमारी जैसी श्रद्धा है, वैसा ही हमारा आत्मा है। वैसे ही हम हैं। श्रद्धाका आधार बुद्धि है। बुद्धिमें संसार जैसा दृढ़ होता है, वैसी श्रद्धा होती है। इसलिये जबतक बुद्धि शुद्ध न हो जाय, तबतक आत्मज्ञान दृढ़ नहीं होगा, तबतक आत्मसाक्षात्कार नहीं होगा।

गीताकी साहित्य-सुषमा

(लेखक—स्व० डा० क्षेत्रलाल साहा, एम्० ए०, डी० लिट्०*)

विश्व जिसकी कल्पना है, गीता भी उसीकी कल्पना है। विश्व-काव्यके कवि और गीता-काव्यके कवि एक ही हैं। विश्वके बारेमें हम कितना ज्ञान रखते हैं? यही बात गीताकी भी है। अन्धकारमय आकाशमें जैसे शत-सहस्र नक्षत्र प्रकाशित हैं, उसी प्रकार गीतामें शब्दसमूह प्रकाशित हो रहे हैं। हम उनमें ज्योतिर्बिन्दुकी कल्पना करते हैं, परंतु वे एक-एक विशाल जगत् हैं। गीतामें एक इन्द्रजालका खेल है। जिसको हम जो समझते हैं, वह वह वस्तु नहीं है, बल्कि कुछ और ही है। प्रत्येक श्लोक मानो भावमें, आभासमें, गुञ्जनमें, चमकमें, दमकमें, क्या-क्या कहकर चला जाता है। चित्तको व्याकुल करके, बुद्धिको अभिभूत करके छिप जाता है। फिर जैसे-का-तैसा रह जाता है—एक अचञ्चल नक्षत्रके समान। गीताका कवि जादू जानता है। एक अजब यन्त्र हाथमें लेकर सैकड़ों दर्शकोंको दिखलाकर चला जाता है। कोई आम देखता है, कोई सेव, कोई जामुन, कोई बैर, कोई अनार, कोई अमरूद और कोई अंगूर। तत्पश्चात् सब विवाद करते हैं। कोई कहता है—मैंने चखकर देखा है, यह आम है। दूसरा एक कहता है कि यह अंगूर है, इसमें कोई संदेह नहीं। मायावी श्रीकृष्णने व्यास मुनिको अद्भुत काव्यकी दिशा दिखला दी थी।

गीता काव्य है तथा विश्वके समस्त काव्योंका प्राणभूत काव्य है। गीताकी इस प्रकृतिसे इसका अनुभव किया जाता है। यह दर्शन-काव्य है, दार्शनिक काव्य नहीं। यह ज्ञान-विज्ञान-काव्य है, वैज्ञानिक काव्य नहीं है। दर्शनका व्यापार होता है केवल ज्ञानको लेकर। काव्यका व्यापार जीवन और हृदयके ऊपर अवलम्बित होता है। जीवंत, प्राणवान्, गतिमान् दर्शन गीतामें अभिव्यक्त हो रहा है। इसीसे गीता-काव्य है, अद्वितीय काव्य है, इसकी कहीं तुलना नहीं है। काव्यमें सौन्दर्यका होना आवश्यक है। गीता सौन्दर्यसे पूर्ण है। भावमयी सुषमासे भरपूर है। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।' गीतामें निगूढ़तम रसकी स्फूर्ति है। इसी कारण बुद्धिके द्वारा गीता समझमें नहीं आती। भाव और भक्तिकी आवश्यकता होती है। यह केवल ज्ञान-तत्त्वकी समालोचना (Critique of Pure Reason) नहीं है। यह चिदानन्द द्वारमें सर्व-स्वरूपकी पूर्ण उपलब्धि है। इसको शुष्क तत्त्वग्रन्थ या गुरुतर और दृढ़तर धर्मग्रन्थ मानकर ही हम नाना प्रकारकी गड़बड़ी पैदा करते हैं। यह तत्त्व और धर्म तो अवश्य ही है, किंतु यह साक्षात् तत्त्व-संदर्शन और धर्म-संजीवन है। भेद अनेक हैं। नीति और नीतियुक्त जीवन एक वस्तु नहीं है।

समस्त विश्वतत्त्व गीताकी रूपमूर्त्ति बन रहा है। दर्शन गीतामें स्पर्शन-योग्य देह धारण कर रहा है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग, त्वक्, मांस-शोणित आदिसे युक्त देह है। इसी कारण किसी निर्दिष्ट तत्त्वकी दृष्टिसे गीताका अध्ययन करनेपर गीताकी अर्थ-संगति नहीं होती। जिस प्रकार केवल त्वक् या अस्थि या स्नायु या मनका अनुसंधान करनेसे पूर्ण मनुष्यकी उपलब्धि नहीं हो सकती। उसी प्रकार सांख्य, वेदान्त, योग, कर्म, ज्ञान, भक्ति—किसी भी एक सूत्रके पकड़नेसे गीताका स्वरूप-बोध नहीं होता। गीता सांख्य-वेदान्त-धर्म-ज्ञान-भक्तिमयी हृदय-मनः-प्राण-चञ्चला ब्रह्मज्योतिर्मयी देवी है। सुर-नर-मुनिगण उसका दर्शन करनेके लिये व्यग्र हैं।

* स्वर्गीय श्रीसाहा महोदय बहुत बड़े विचारशील विद्वान् तथा 'कल्याण'के पुराने लेखक थे। इन्होंने अपने दृष्टिकोणसे गीतापर नवीन ढंगसे विचार किया और उसे लिपिबद्ध करके भेजा था। उसीको यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥
(दु० स० श० ७ । ३)

इसी कारण गीता—

गङ्गा गीता च सावित्री सीता सत्या पतिव्रता।
अर्द्धमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भ्रान्तिनाशिनी ॥

ये सब बातें उत्प्रेक्षा या अर्थवाद नहीं हैं। गीताकाव्य मूर्त्तिमयी तत्त्वार्थज्ञानमञ्जरी है। सचमुच काव्यका विशेषत्व यही है। इसमें 'अनेक' अर्थात् बहुतमें एककी प्रतिष्ठा होती है तथा एक अनेक रूपावरणमें मूर्तिमान् और क्रियावान् होता है। काव्यमें एक केन्द्रीभूत प्राण-वस्तु होती है। वह सारे अंशभूत अङ्ग-प्रत्यङ्गको अङ्गाङ्गीभावमें गूँथकर अपने साथ एकीभूत करती है, प्राणयुक्त करती है, नियन्त्रित करती है और नाना प्रकारके कार्योंमें प्रेरित करती है। वे कार्य पृथक्-पृथक् अनेक नहीं रहते, एकका अनुगमन करके एक हो जाते हैं। अखण्डरूपमें प्राण प्रत्येक अङ्गमें प्रतिबिम्बित होता है। प्रत्येक अङ्ग इस प्राणके अनुसृत होकर प्राणका दर्पण-स्वरूप हो जाता है। यह जो वृक्ष है, इसकी शाखा, प्रशाखा, पल्लव, पत्र, पुष्प, फल—कुछ भी वृक्ष नहीं है; तथापि सब ही वृक्ष हैं। प्रत्येक अंश ही इस सजीव वृक्षकी पूर्णताके साधनमें तथा जीवनानुभावमें नियुक्त है।

जैव सृष्टिका यही नियम है, कला-सृष्टिका भी यही नियम है। समष्टिके साथ व्यष्टिका भाव, परिमाण, आकार, संख्या आदिकी संगति और सामञ्जस्य स्थापित होनेपर ही सुषमाकी सृष्टि होती है। गीता सर्वत्र सुषमामयी है। गीता अष्टादश अध्यायोंमें विभक्त है। परंतु जान पड़ता है कि पहले गीताका कोई अध्याय-विभाग नहीं था। अध्याय-परिच्छेद-शून्य पूर्णाङ्गी गीता रचे जानेके बाद व्यासजीने सर्वसाधारणकी सुविधाके लिये गीताका अध्याय-विभाग कर दिया। गीताकी तत्त्व-विवृति इस प्रकार निरवच्छिन्न प्रवाहमें चली गयी है, कहीं भी छिन्न नहीं है, कहीं भी व्यवधान नहीं पड़ता। प्रत्येक अङ्ग दूसरे अङ्गसे संयुक्त है, मानो एक देह हैं। जान पड़ता है ऋषि सम्पूर्ण गीतामें केवल एक ही बात कहना चाहते हैं, केवल एक ही गीति—कविता लिखना चाहते हैं, केवल एक ही रागिणीका आलाप करना चाहते हैं। तथापि वे इस प्रकारसे करते हैं, मानो उसी एक ही बातमें विश्वकी सारी बातें प्रकाशित हो जाती हैं, मानो उसी एक कवितामें विश्वके सारे रस-रूप अभिव्यञ्जित होते हैं, मानो उसी एक रागिणीमें ही विश्वका सारा संगीत झंकृत हो उठता है।

गीताके अवयव-संस्थानमें एक सुचारु शृङ्खला है। गीताके अध्यायोंकी संख्या अष्टादश है। प्रथम अध्याय उपक्रमणिका है—सारी गीतोपनिषद्का अधिष्ठान (back ground या setting) है। शेष अध्याय उपसंहार हैं, समस्त प्रतिपादित विषयोंका संग्रह (synopsis) हैं। धृतराष्ट्रकी जिज्ञासासे संजयके मुखद्वारा गीताका प्रारम्भ होता है। सबके अन्तमें संजयकी उक्ति पाँच श्लोकोंमें अति मनोरम रूपमें गीताकी परिसमाप्ति है। संजय कहते हैं—'मैंने कृष्णार्जुनकी यह रोमाञ्चकारिणी अद्भुत कथा सुनी है, व्यासकी कृपासे वक्ता स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्णके श्रीमुखसे यह निगूढ़ और परम तत्त्व सुना है। केशवार्जुनका यह अद्भुत संवाद मैं जितना ही स्मरण करता हूँ, उतना ही पुलकित हो रहा हूँ। मैं श्रीहरिके अति अद्भुत रूपको जितना ही स्मरण करता हूँ, उतना ही महान् विस्मयसे अभिभूत होता हूँ।' 'अद्भुत' शब्द तीन बार, 'संस्मृत्य' दो बार तथा 'हृष्यामि' दो बार प्रयुक्त हुआ है। इससे संजयकी महान् भावाविष्ट अवस्था अति उज्ज्वल रूपमें व्यक्त होती है। संजय गीताके रूप, काव्यैश्वर्यमें तन्मय हैं।

द्वितीय अध्यायसे एकादश अध्यायतक गीताका प्रथमार्द्ध है तथा द्वादशसे सप्तदश अध्यायपर्यन्त द्वितीयार्द्ध है। प्रथमार्द्धके दो भाग हैं। द्वितीयसे षष्ठ अध्यायतक तथा सप्तमसे एकादश अध्यायतक। द्वितीयार्द्धके भी दो भाग हैं—द्वादशसे पञ्चदश अध्यायतक और षोडशसे सप्तदश अध्यायतक। इन चार विभागोंमेंसे प्रथम विभागमें जीवात्मतत्त्व विवृत हुआ है। तृतीय और चतुर्थ विभागमें भी (१२ से १७ वें अध्याय तक) जीवात्मतत्त्व है। परंतु उनमें बहुत भेद है। प्रथम विभागमें जीवात्माका आत्मांश प्रधान है और वह आत्मांश परमात्माभिमुख है। तृतीय और चतुर्थ विभागमें जीवात्माका जीवांश प्रधान है और वह जीव प्रकृति-अभिमुख है। तृतीय और चतुर्थ भागका अन्तर यह है कि तृतीयमें प्रधानतः जीवकी दैवसम्पद् और चतुर्थमें आसुरभाव उक्त हुआ है।

दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु।
(अ० १६।६)

संक्षेपमें, प्रथम भागमें परमात्मसाधन-प्रयासी ब्रह्मभावाकाङ्क्षी आत्माकी कथा है। द्वितीय भागमें परमात्मतत्त्वकी विवृति है। तृतीय भागमें आत्मा और प्रकृतिका सम्बन्ध है, प्रकृतिगत आत्मा है। चतुर्थ इनसे निम्न स्तरमें है, वहाँ तामसी प्रकृतिके अनुगत आत्मा है।

दूसरे देखनेपर प्रथमार्द्धमें आत्मतत्त्व ब्रह्मतत्त्वमें योगयुक्त हो रहा है। द्वितीयार्द्धमें आत्मतत्त्व प्रकृतितत्त्वमें विलीन हो रहा है और यहीं भक्तितत्त्वके प्रेमाञ्जनसे प्रकाशित दृष्टिसे देखनेपर ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण और श्रीराधा अति मनोहर युगल-मिलनमें प्रभासित हो रहे हैं तथा दूसरी ओरसे देखें तो ज्योतिर्मयी हर-पार्वतीकी मूर्ति दीखती है। एक ओरसे किशोर-किशोरी प्रेममयी हैं और दूसरी ओरसे जनक-जननी स्नेह-कल्याणमयी हैं; परंतु गीतामें प्रधानतः राधा-कृष्ण आभासित नहीं हैं। शिव-दुर्गा ही प्रतिभासित हो रहे हैं। यह बात अद्भुत-सी लग सकती है, परंतु है सत्य। इसपर आगे विचार करेंगे। श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवका मैंने एक चित्र देखा है। उसमें लंबे और सीधे कुछ ऐसे काँचके टुकड़े लगाये गये हैं कि सामनेसे देखनेपर जान पड़ता है कि रामकृष्णदेव भक्ति-भक्तरूप हैं, दूसरी दृष्टिसे देखनेपर दीखता है कि सृष्टि-संहारकारिणी महाकालीके पदतलमें सकल मङ्गलमय शिव हैं। विपरीत दिशासे देखनेपर जान पड़ता है कि श्रीराधा-कृष्ण युगल—प्रेम-मिलनमें मिल रहे हैं। गीताके अन्तरङ्ग भावरूपी ध्यान-नेत्रसे देखनेपर यही भाव प्रतिभात होता है। सामनेसे कर्म-ज्ञान-भक्तिविधायिनी जीव-प्रकृति एक दृष्टिसे राधा-कृष्ण हैं और दूसरी दृष्टिसे शिव-दुर्गा हैं।

गीतामें किसी निर्दिष्ट खण्डित तत्त्वकी व्याख्या नहीं है।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

(श्रुति)

गीतामें यही पूर्णत्वयुक्त समस्त भूत्तं प्रकाशित है।

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(भागवत)

—इसीकी प्रकाशरूपमयी गीता है। जीवात्माने देह धारण करके संसारमें प्रवेश किया। यही मानव-जीवनका प्रारम्भ है। जीव क्या है? आत्मा क्या है? देह क्या है? संसार क्या है? यह सब प्रारम्भिक जिज्ञासा है, प्रथम प्रश्न है। संसार कर्मक्षेत्र है, कर्ममय है। कर्म ही संसार है। संसार जगत्में है, संसारके लिये ही जगत् है। जगत्में जो कुछ है, सब कर्म है। जगत् ही कर्म है, जगत् कार्य भी है। किस क्रियाका कार्य है? विसर्पण-क्रियाका कार्य है। किसका विसर्जन?—ब्रह्मका अर्थात् भगवान्का। क्या विसर्जन? भगवत्ताका विसर्जन। किसके प्रति? निज प्रकृतिके प्रति। विश्वसृष्टि एक त्यागकी लीला है। तत्त्व तो 'एकमेवाद्वितीयम्' है, इसमें त्याग कैसे होगा? —होगा। ब्रह्म उनका पूर्ण स्वभाव है। उन्होंने अपना सर्वस्व अपनी प्रकृतिको दान कर दिया। प्रकृति ब्रह्मके ही अन्तर्गत है, उसकी स्वगत है, वे अखण्ड-अद्वय होकर भी दानके लिये भिन्नवत् हो गये, दो हो गये—ब्रह्म हो गये और प्रकृति हो गये। इस प्रकार एक होते हुए भी उनकी एक महती शक्ति है। उस शक्तिका नाम माया है। यह सब विविध भेदरूप अनेकीभाव वे क्यों करते हैं? बादरायण कहते हैं—'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।'

हम सहज ही इसका अर्थ समझ सकते हैं। ब्रह्म आनन्दमय है, रसमय है—'रसो वै सः।' जो परानन्द है, वही प्रेम है। प्रेम विसर्जनात्मक है। अपनेको दान कर देनेकी उत्कट इच्छाका नाम ही प्रेम है। ब्रह्म प्रेममय हैं, अतएव आत्मदान उनके लिये अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मकी यह इच्छा ही द्वैतभाव सृजन करती है। काम और काम्य, पुरुष और प्रकृति, स्वभाव और अभाव, पाजिटिव और नेगेटिव आकर्षणमयी विभिन्न विद्युत्शक्ति—स्तर-स्तरमें इस प्रकारके भावोंके विकासमें विश्व अभिव्यक्त होता है।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि-
मनसोरेतः प्रथमं यदासत्।

(श्रुति)

आनन्द, रस, प्रेम, काम—सब तत्त्वतः एक हैं। इसी कारण श्रुति कहती है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

विश्व-सृष्टिकी यही आदि-कथा है। गीताकी एक बात बहुत रहस्यमय जान पड़ती है—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।

(८।३)

(७)

कर्म किसे कहते हैं ? जिस विसर्जनसे जीवभावका उद्भव होता है, वही कर्म है। ब्रह्मका वह आत्म-समर्पणका व्यापार यहाँ सूचित होता है। एक ओर राधा-कृष्णकी प्रेमलीला है सर्वशिरोमणि और दूसरी ओर है जीवगणका मौन आकर्षण। सबसे नीचे अणु-परमाणुकी संयोगशीलता। सर्वत्र वस्तुतः आत्मसमर्पणकी आकाङ्क्षा है।

इसमें एक विशेष बात है। ब्रह्मने प्रकृतिके प्रति आत्म-समर्पण किया, इससे प्रकृति ब्रह्ममयी हो गयी और ब्रह्म प्रकृतियुक्त हो गये। ब्रह्मका विभाग नहीं होता, अतएव समस्त ब्रह्म ही प्रकृतिगत हो गया। परंतु सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात यह है कि यह सब होते हुए भी ब्रह्म ज्यों-का-त्यों ही रहा, उसके स्वरूपमें न तो कोई व्यत्यय हुआ, न कोई अंश-विभाग ही हुआ। अतएव श्रुति कहती है—

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

श्रुति और भी कहती है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

दोनों बातोंका समन्वय कैसे होगा, यह विचारणीय है। परंतु इधर कुछ और ही बात हुई—

न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥

(गीता १० । ३९)

गीताके नवम अध्यायके ४-६ श्लोकमें यह विषय उक्त है। चण्डीदासका एक पद है। श्रीकृष्ण श्रीराधाजीसे कहते हैं—

जपिते तोमार नाम, वंशीधारी अनुगाम तोमार चरणेर परिवास।
तुया प्रेम साधि गोरी, आइनु गोकुल पुरी बरज मण्डले परमाय ॥

इस पदमें जो निगूढ़ अर्थ है, वह इस ज्ञानालोकमें देखा जा सकता है। तुम्हारे चरणोंका परिवास कितना सुन्दर है ? अर्थात् मैं तुम्हारे प्रेमवश निर्गुण ब्रह्म होकर भी सगुण भगवान् बनता हूँ। इसी कारण श्रीकृष्ण व्रजाङ्गनाओंके 'गुण'-निधि हैं।

(८)

कर्मसे ही विश्वकी उत्पत्ति है। कर्मको लेकर ही मनुष्य-जीवनका आरम्भ है। कर्म ही जीवन है; क्योंकि कर्म ही गति, चेष्टा और परिवर्तन है। जीवन भी वही है। सद्योजात शिशुकी भाव-गतिको ध्यानपूर्वक देखनेसे ज्ञात हो जाता है कि जीवनका अर्थ क्या है। चञ्चलता ही जीवन है। चञ्चलता अर्थात् केवल चलना। इसकी विरोधिनी स्थिरता है। जगत् भी केवल चलता है, इसी कारण इसका नाम जगत् है। जगत्का अर्थ है—नित्यगति, चञ्चल। हीराक्लीतसने यूनानमें इस तत्त्वका प्रचार किया था कि प्राकृतिक प्रेरणासे ही लोग काम करते हैं—

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

(गीता ३ । ५)

स्वाभाविक कर्म सुखका हेतु है। विश्वमय कर्मका एक-एक अंश एक-एक आदमीके भागमें अर्थात् भाग्यमें आया है। यही प्राप्त कर्म अर्थात् स्वभावगत कर्म यदि चित्त अस्वीकार करता है और उसके सम्पादनसे विमुख होता है, तब विचार आरम्भ होता है। जिसके करनेमें सुखानुभव होता है, क्या वही कर्त्तव्य है ? कार्य तो एक नहीं है, अनेक हैं। कौन-सा कार्य करें ? किस उद्देश्यसे करें ? कामनाको पूर्ण करनेके लिये तो बहुत-से कर्म किये गये। परंतु कामनाका कहीं अन्त नहीं दीखता। कर्म जालके समान हमको फँसाये रखता है। जो कुछ करना होता था, पहले उसे मैं ठीक समझ पाता था, देख पाता था। पर अब तो सब अस्पष्ट हो गया है। पद-पदपर कर्म-संशय और कर्म-संकट उपस्थित होता है। कर्म-परित्याग असम्भव हो जाता है। स्थिर होकर मैं बैठ नहीं सकता, खड़ा नहीं हो सकता। सामने कर्मकी पुकार है, पीछेसे केवल कर्म ढकेलता है। पर कर्ममें प्रीति कहाँ है ? कर्म तो भयावह है। मैं क्यों कर्म करूँ ? कौन कर्म करेगा ? कर्मका फल अति दारुण है। मैं कर्म नहीं करूँगा, नहीं कर सकूँगा। इसी स्थितिमें गीताका प्रारम्भ होता है। इसीका नाम माया-जाल है। इस अवस्थामें गुरुके चरणोंका आश्रय लेना पड़ता है। इसी कारण अर्जुनने कहा है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

(९)

धर्म-तत्त्व या नीतितत्त्वकी आलोचना करना गीताका

उद्देश्य नहीं है । गीताने बतलाया है कि किस प्रकारसे जीवन-यापन करना चाहिये । 'जीवनमें ही सारे तत्त्वोंका समावेश है । कर्म कौन करता है ?—प्रकृति । किसके लिये ? पुरुषके लिये । पुरुषके भोग और मोक्षके लिये । पुरुष कौन है ?—पुरुष आत्मा है । अर्जुन ! तुम्हारे सामने अति भयानक भ्रम उपस्थित हुआ है । आत्मीय स्वजनोंकी मृत्युकी चिन्तासे तुम आकुल हो रहे हो । भ्रम है ! भ्रम है ! मनुष्य देह नहीं है, आत्मा है । देहका विनाश होता है, आत्मा अविनाशी है । आत्माके जन्म-मरण नहीं है । आत्माने कितने देह धारण किये हैं, भविष्यमें कितने देह धारण करेगा—इसकी इयत्ता नहीं है । जैसे जीर्ण वस्त्रका परित्याग किया जाता है, वैसे ही मृत्यु भी है । तुम युद्ध करो ।'

जन्म-मृत्युका प्रश्न मनुष्य-जीवनमें सबसे बड़ा प्रश्न है । इस बातको अच्छी तरह समझे बिना जीवन-यापन करना अँधेरेमें चलनेके समान है । आत्माके तत्त्वको बिना समझे जीवनका लक्ष्य स्थिर नहीं हो सकता । परंतु आत्मतत्त्व अति दुरूह है, अति निगूढ़ है ।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
नहि सुविज्ञेय अणुरेष धर्मः । (श्रुति)

आत्माका विवरण सुननेसे ही आत्मज्ञानकी उपलब्धि नहीं हो जाती । आत्मा अज, नित्य और शाश्वत है । विरज, विमृत्यु, विशोक, सत्यकाम, सत्यसंकल्प है । अणुसे भी अणु है । महान्‌से भी महान् है । अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकार्य है । इसका अनुभव होना बहुत ही कठिन है, इसी कारण गीता एकाध्यायिनी नहीं है, अष्टादशाध्यायिनी है । फिर भी इस वर्णनको अवहित चित्तसे सुनना आवश्यक है । एक सार बात याद रखनेयोग्य है । नीति और धर्मका साधन, भजन, जप-तप, दान-यज्ञ, ज्ञान-भक्ति—जो कुछ मनुष्यके लिये करणीय या पालनीय है, सब कुछ आत्माको जाननेके लिये है और आत्माको जाननेका अर्थ है आत्माको प्राप्त करना । जबतक हम आत्माको नहीं जान लेते, तबतक मानव-जीवन अधिकांशमें अपूर्ण रहता है । तब फिर आत्माकी आराधना न करके ईश्वरकी आराधना क्यों करें ? इसलिये कि ईश्वरको पानेपर ही आत्माकी पूर्णरूपसे प्राप्ति हो सकती है—यह अति अपूर्व, अति आश्चर्यजनक तत्त्व है । ''अर्जुन ! सुनो—एक-एक करके सब बतलाना है । जो सबसे निकट है, सबसे सहज है, सबसे अधिक प्रत्यक्ष है, वहींसे आरम्भ किया जाता है । वह क्या है ? क्या तुम जानते हो ? वह कर्म है, अतएव कर्मयोग सुनो ।

''प्रापञ्चिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक—विश्वमें जो कुछ है, सभी कुछ स्रोतके समान है । आत्मासे प्रवाहित होकर आत्मामें जाकर मिल रहा है । सब कुछ योगवर्त्म है । मनुष्य-जीवनमें जो कर्म है, वह भी एक स्रोत है । वह कर्मस्रोत किस प्रकार ब्रह्मसागरमें पड़ता है, यही आगे बतलाना है । यही कर्मयोग है । विश्वके विभिन्न स्रोत पृथक्-पृथक् नहीं हैं । सभी परस्पर संयुक्त हैं । कब कौन-सा स्रोत कैसे किसके साथ मिलता है, किस प्रकार जाल बुनकर एक साथ मिल जाता है और फिर पृथक् रूपमें प्रवाहित होता है—इसका पता लगाना बहुत ही कठिन कार्य है । तथापि जहाँतक सम्भव होगा, पृथक्-पृथक् करके बतलाया जायगा । परंतु फिर भी पृथक्-पृथक् नहीं होगा ।

''कर्म आवश्यक है, परंतु कर्म इतने जाल-जंजालमें फँसाकर यन्त्रणा क्यों देता है ?—कामनाके कारण । कामना करके अर्थात् सुखकी इच्छासे कर्म करनेपर दुःख होना अनिवार्य है, सांसारिक क्षणस्थायी सुखसे क्या लाभ होगा ? अनन्त सुखके सिन्धु जो भगवान्, परमात्मा हैं—उन्हींको प्राप्त करनेके लिये कर्म करो । बात समझमें नहीं आ रही है, आ जायगी । पहले कामनाका परित्याग करो । वासना कुहासाके समान है, आशा कु-आशा है । ज्ञानके सूर्यको आवृत कर रखती है । सुखाशाके अभ्यासका त्याग करो । कर्मका त्याग नहीं हो सकता । उसके लिये चेष्टा न करो । 'मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।' कर्म शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्यका मूल है । कर्मशक्ति नदीके समान है । बहती जायगी । बंद करोगे तो सड़न पैदा होगी । वृक्ष-लता, शस्यादि सड़ जायँगे । देशका अधःपतन होगा ।

''व्यर्थकी वासनाका त्याग करके, इन्द्रियसंयम करके स्थिर होकर कर्त्तव्य कर्म करते रहनेसे ही तुम्हारा ज्ञानालोक प्रकाशित होगा । बुद्धि निर्मल होगी । अब ज्ञानकी बातें कही जाती हैं सुनो ।

''ज्ञानोदयका प्रथम लक्षण है—कर्मराज्यका आलोकित होने लगना । धीरे-धीरे यह स्पष्टरूपमें दिखायी देने लगता है कि सब कुछ शृङ्खलामें गुँथा हुआ है । श्रेणीबद्ध, स्तर-स्तरपर कर्म-सुकर्म, कुकर्म-अकर्म—सारे भेद क्रमशः समझमें

आने लगते हैं। इसमें एक आश्चर्यकी बात दीख पड़ेगी। जिसको तुम केवल अज्ञानात्मक कर्म समझते थे, वह केवल शुष्क कर्म नहीं है। वह भी ज्ञान है। कर्ममात्रको ही ज्ञानमें परिणत किया जा सकता है। रासायनिक प्रक्रियाके द्वारा भौतिक पदार्थको जैसे कठिनावस्थासे तरलावस्थामें तथा तरलावस्थासे वायवीयावस्थामें परिणत करते हैं, उसी प्रकार कठिन कर्मको भावमय ज्ञानमें परिणत किया जा सकता है। केवल यही नहीं। कर्म जितना ही निष्काम होता है और ज्ञान जितना ही निर्मल होता है, उतना ही कर्म बिना प्रयासके ज्ञानमें पर्यवसित हो जाता है। चाहे कितना ही घनिष्ठ भावसे कर्म क्यों न करें, जान पड़ेगा कि ज्ञानानुशीलन ही किया जा रहा है। कर्मसे ज्ञान तत्त्वतः पृथक् नहीं है।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ॥

(गीता ५ । ४)

"ज्ञानके साधनमें आरोहण करनेपर कर्मका परित्याग नहीं किया जा सकता, ऐसी बात नहीं है। परंतु कर्मका त्याग न करना ही श्रेय है; क्योंकि कर्मका परित्याग करके ज्ञानका आश्रय लेनेपर तामसिक आलस्य और अवसादके घोर अन्धकारमें पड़कर अन्तमें ज्ञानतकको खोकर अधःपतित होनेका विशेष भय रहता है।

"संन्यास बहुत श्रेष्ठ है। परंतु संन्यासके लिये कर्मत्याग आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त केवल कर्मत्याग करनेसे ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता। लौकिकी नीति भी यही कहती है—

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहे तु पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।

"तब संन्यासी कौन है ? जिसमें आकाङ्क्षा नहीं है, द्वेष नहीं है, जो सुख-दुःख, लाभालाभ, इष्टानिष्ट, शत्रु-मित्र, सबको अविकृत चित्तसे एक दृष्टिसे देखता है, वही संन्यासी है; कर्मक्षेत्र ही इस संन्यास-साधनका उत्कृष्ट स्थान है। सम्पूर्ण वासनाविहीन अहंकारशून्य कर्मानुशीलन ही श्रेष्ठ संन्यास है। मेरे भीतर जो 'मैं' है, वह मैं तो कुछ भी करता नहीं है। इन्द्रियाँ विषयोंमें विचरण करती हैं। मैं जानता हूँ, देखता हूँ—बस, इतना ही मात्र। इस कर्म-प्रवाहके बुरे-भलेके साथ, लाभ-हानिके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। देह, मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि मिल-जुलकर अपना-अपना काम करते हैं, उनमें न मैं बाधा दूँगा और न योग ही दूँगा। प्रकृति ईश्वरके निर्देशानुसार कार्य करती जा रही है। सारे कार्य उसीके हैं और उसीके रहें। यदि कहीं मेरा कार्य है, ऐसी धारणा होती है तो उसे ईश्वरको समर्पण कर देनेमें ही सुविधा है, उसीमें सुख है। दूसरेका जो है, वह दूसरेका ही रहे। दूसरेकी वस्तु उसको दे दें, तो भी हमको प्रचुर लाभ है। ब्रह्मके सिवा दूसरा कौन पर (दूसरा) है ? सुख चाहनेसे ही दुःख होता है, सुख-वासना त्याग करनेपर सुख-ही-सुख है। मैं आत्मा हूँ। आत्माको लेकर एकान्तमें रहते हुए प्रकृतिकी कर्मलीला देखते रहना अपार सुखका हेतु है। कैसी सुन्दर बात है ! जो कुछ सुख है, सब हमसे ही है; जो कुछ शान्ति, तृप्ति, आनन्द, ज्योति है—सभी कुछ तो हमारे भीतर है। हम कर्म करते हैं, ज्ञान प्राप्त करते हैं, कर्म करके भी कर्मत्याग करते हैं, संन्यास करते हैं, हमारे भीतर आनन्द और ज्योतिका अटूट स्रोत है—इस बातको ध्यानस्थ होकर देखो !

"ध्यानयोगी पतञ्जलिके द्वारा प्रदर्शित अध्यात्म-साधन प्रारम्भ हुआ कि चित्त स्थिर और निर्विकार हुआ। मैं अपनेमें अर्थात् आत्मामें अधिष्ठित दीपशिखाको प्रज्वलित करता हूँ, परंतु निष्कम्प। कामनाकी वायु वह नहीं रही है। इन्द्रियानुभवसे अतीत सुख केवल बुद्धिद्वारा अनुभूत हो रहा है। अति गम्भीर, अति निविड़ सुख है। जान पड़ता है सब सुखोंका सार है। यही तो परम लाभ है। यह जब प्राप्त हो गया, तब और कुछ भी आवश्यक नहीं रहा। फिर दुःखका भय नहीं रहा, सुखका साम्राज्य प्रतिष्ठित हो गया है। सुखके साथ-साथ ज्ञान, मानो ज्ञान ही सुख है और सुख ही ज्ञान है। कैसा अद्भुत ज्ञान है ! विश्वमें जो कुछ है, जो कोई है, सब कुछ भी तो मेरे भीतर है, यह कैसी विस्मयकी बात है ! और मैं ही सर्वभूतोंमें हूँ। कुछ भी तो मुझसे अतिरिक्त नहीं है।

"तो क्या आत्मा ही विश्वकी प्रतिष्ठा है ? अवश्यमेव ! इस आत्मज्योतिके पीछे जो दूसरी ज्योति दिखायी देती है वह और भी उज्ज्वलतर ज्योति है, ये हैं अधिष्ठानरूपमें स्थित परमात्मा। यहींपर चैतन्य, सच्चिदानन्द हैं, उनका आभास मेरी आत्मा है, यह उन्हींकी छाया है। ज्योतिकी छाया ज्योतिरूप है, हम आभासचैतन्य हैं, हम चिच्छाया हैं। इस ज्योतिश्छायाके साथ-साथ परमात्माकी एक तमश्छाया

है, उसका भी अनुभव हो रहा है। उसके आठ अङ्ग हैं—बुद्धि, मन, अहंकार, व्योम, वायु, वह्नि, जल, भूमि। आभास-चैतन्यरूपी आत्माकी यह तमश्छाया ही उपाधि है। ये दो छाया परमात्माकी दो प्रकृति हैं—परा और अपरा। परमात्माकी पराप्रकृतिरूपिणी जीवभूता आत्मा है और अपरा प्रकृति विश्व-बीजमयी, विश्वजननी है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सब कुछ इन्हीं तीनोंके अन्तर्गत है। परमात्मा, परा प्रकृति और अपरा प्रकृति!

''विश्वमें सब कुछ ब्रह्म है, सब कुछ आत्मा है। इसमें दो भाव लक्ष्यमें रखने योग्य हैं—एक क्षर और दूसरा अक्षर। दृश्यमान जगत्का जो नित्य चञ्चल, नित्य परिवर्तनमय विभाव है, वही क्षर ब्रह्म है और इसके भीतर, इसके परपारमें जो दूसरा एक निश्चल, निर्विकार, नित्य, निरञ्जन, सर्वातिशायी, सनातनभाव है, वही अक्षर ब्रह्म है। इनमें विभिन्न भूतभाव धारण करके जो आत्मा स्थित है, उसका नाम अधिभूत है। समस्त विश्वके अन्तर्यामीरूपमें जो है, वह अधिदैवत है। प्रत्येक व्यष्टि देहके अन्तर्देशमें जो है, वह अधियज्ञ है। अधिदेवता ही परम पुरुष है। मृत्युकालमें उसी परम पुरुषका ध्यान करते हुए प्रयाण करनेपर फिर संसारमें लौटकर नहीं आना पड़ता। यह जो अपरा प्रकृतिके विषयमें कहा गया है, इसीका नाम अव्यक्त है। इसीसे कल्पके आदिमें विश्वका उद्भव होता है तथा कल्पके अन्तमें इसीमें विश्व विलीन हो जाता है—सब कुछ विलीन हो जाता है। रह जाता है केवल इस अव्यक्तसे विलक्षण एक अव्यक्त सनातन तत्त्व। वही ब्रह्म है, वही भगवान् है, वही परम गति है, वही परम ध्यान है, वही परम पुरुष है, उसे भक्तिके द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।''

श्रीकृष्णने कहा—'पार्थ! सुनो। अति उत्तम, अति गुह्य, अति अन्तरङ्ग एक तत्त्व अब तुम्हें बतला रहा हूँ। सावधान होकर सुनो। यह आत्मा, यह ब्रह्म, यह परा-अपरा प्रकृति, यह परम सुन्दर, यह क्षर-अक्षर अधिदैवत, अधियज्ञ आदि जो कुछ है, सब कुछ मैं हूँ। मैं अप्रकाश्य रूपसे विश्वब्रह्माण्डमें व्याप्त हो रहा हूँ। मुझमें ही सब भूत अवस्थित हैं; तथापि मैं किसीमें नहीं, मुझमें ही सर्वभूत हैं, यह भी ठीक नहीं; क्योंकि मैं सब सम्बन्धोंसे परे हूँ। तथापि मैं सब भूतोंको धारण कर रहा हूँ, तथा पालन कर रहा हूँ, यही मेरा ऐश्वर योग-रहस्य है।

'अव्यक्तसे विश्वकी उत्पत्तिकी बात जो मैंने कही है, वह मेरे संकल्पाधीन है। मेरी अध्यक्षतामें प्रकृति जगत्का सृजन करती है।' श्रीभगवान् कुछ हँसते हुए बोले, ''मेरे इस मानुषी तनुको देखकर मुझको मनुष्य मत समझना। मैं ही विश्व-ब्रह्माण्डका अधिपति हूँ—इस बातको जो नहीं जानता, उसका जीवन व्यर्थ है। वह असुरजातीय है। महात्मा-लोग मेरा ही भजन करते हैं। तुम मेरे ही नाम-गुण आदिका कीर्तन करो। मेरी ही पूजा-अर्चना करो, मेरे ही प्रति भक्तिमान् बनो। पिता-माता, वेद-वेदान्त, प्रभव-प्रलय, मृत्यु-अमृत, सत्-असत्—सब कुछ मैं हूँ।

''मैं ही सबका आश्रय हूँ। वेदोक्त कर्म करके स्वर्ग प्राप्त कर सकते हो; किंतु पुण्यके समाप्त हो जानेपर पुनः मृत्युलोकमें लौट आना पड़ेगा। परंतु मेरी आराधनासे सर्वोत्तम गति प्राप्त होती है। सारी चिन्ता मेरी ओर प्रवाहित हो, सारी भक्ति-प्रीति मुझमें ही व्यस्त हो, सारे यज्ञ मेरे ही उद्देश्यसे किये जायँ, तब निश्चय ही मेरी प्राप्ति होगी।''

इस नवम अध्यायसे ही भक्तियोग प्रारम्भ होता है। अर्जुन सुन-सुनकर विस्मित और आनन्दित है, मोहका आवरण हट रहा है। अर्जुन कहने लगे—'श्रीकृष्ण! सचमुच तुम ही परब्रह्म हो, तुम्हीं परम पुरुष हो। तुम्हीं भगवान् हो। सब लोग यही कहते हैं। योगी-ऋषि आदि सबके मुँहसे यही वाणी निकलती है। मैं आज समझा—तुम सर्वमय हो, तुम सर्वस्वरूप हो, परमात्मा हो, परमेश्वर हो। तुम्हारा विशिष्ट उत्तम उज्ज्वल प्रकाश कहाँ-कहाँ है, मुझको विशेष रूपसे बतलाओ। जिधर ही चिन्तन करता हूँ, जिधर ही दृष्टि जाती है, सर्वत्र मानो मैं तुम्हींको देख रहा हूँ। तुम्हींको पा रहा हूँ।'

यहाँ विभूतियोग विवृत हुआ है। जगत्में जो कुछ श्रेष्ठ है, जो कुछ गौरवविशिष्ट है, जो कुछ महिमान्वित है, जो कुछ सुन्दर है, जो कुछ प्रधान है, जो कुछ प्रभावयुक्त है, जो कुछ शक्तिशाली है, जो कुछ ज्योतिष्मान् है, सभी श्रीकृष्ण है, श्रीकृष्णकी विभूतिका अन्त नहीं है।

अर्जुनने कहा—'केशव! तुम्हारी इन विभिन्न विभूतियोंके वैभवको मैंने समझा। अब अपनी समस्त विश्वव्यापी, विश्वरूप, ब्रह्माण्डव्यापिनी महीयसी सर्वैश्वर्यमयी मूर्ति एक बार मुझको दिखाओ।' श्रीकृष्ण बोले—'देखो, इन प्राकृत नेत्रोंसे वह रूप नहीं देखा जाता। तुमको दिव्य चक्षु देता हूँ। मेरे उस सर्वैश्वर्यमय रूपको देखो।' अर्जुनने विश्वरूप देखा।

सहस्रों सूर्य एक साथ उदय होनेपर विश्वमें जैसी विराट् ज्योति प्रकाशित हो सकती है, उससे भी उज्ज्वल, अपूर्व अनन्त ज्योति मूर्ति प्रकाशित हो उठी।

अनन्त मुख, अनन्त नेत्र, अनन्त बाहु, अनन्त चरण—समस्त अद्भुत दर्शन। शत-शत दिव्य वर्ण, शत-शत दिव्य आभरण, शत-शत उद्यत आयुध, दिव्य माल्य, दिव्य गन्धका अनुलेपन—समस्त ज्योतिर्मय! असीम आकाश, अनन्त अन्तरिक्ष, निखिल विश्वब्रह्माण्डको व्यातकर अप्रमत्त, सुप्रदीप्त अनलार्कद्युति! कैसा अद्भुत! कैसा उग्र! कैसा दुर्निरीक्ष्य रूप! ब्रह्मा, प्रजापति, देवगण, ऋषिगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किंनर, दैत्य-दानव—सभी इस विराट् ज्योतिर्मय देहमें विराजित हैं! रुद्रगण, आदित्यगण, वसुगण, विश्वेदेव-गण, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितृगण—सभी विस्मित नेत्रसे इस विशाल रूपप्रभाको देख रहे हैं। कैसा भयंकर रूप है! उधर संहाररूपी रुद्र ज्वलंत मुख फैलाकर समस्त भूतवृन्दको ग्रास बना रहे हैं। कैसा भीषण आकर्षण है! दुर्दमनीय वेगसे दौड़-दौड़कर सभी इस प्रदीप्त मुखकोटरमें प्रवेश कर रहे हैं। कैसा करालदंष्ट्र मुख है। कैसी लपलपाती वह्निशिखामयी जिह्वा है, जगत्के वीरवृन्द स्रोतमें प्रवाहित जलके वेगके समान दौड़कर इस प्रज्वलंत प्रकाण्ड वक्त्रमें प्रवेश कर रहे हैं, जैसे ज्वलंत अनलमें पतङ्गोंके समूह प्रवेश करके संहारको प्राप्त हो रहे हों।

अर्जुनने इस महाविस्मयजनक रूपको देखकर प्रत्यक्षतः समझ लिया कि श्रीकृष्ण ही अनन्त, अक्षर, परम पुराण पुरुष हैं, श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, श्रीकृष्ण ही विश्वके निधान हैं। उस ज्वलंत ब्रह्मज्योतिको अर्जुन सहन न कर सके। श्रीकृष्णने रुद्र-तेजको संवरण करके मानवरूप धारण किया। गीताका प्रथमार्द्ध यहीं समाप्त होता है। द्वितीय अध्यायसे धीरे-धीरे, स्तर-स्तरपर जो महाभावारोह चला, वह ग्यारहवें अध्यायमें जाकर सर्वोच्च शिखरपर प्रतिष्ठित हो गया। इसके आगे अब आरोह नहीं है, अब अवरोह है। वस्तुतः अवरोह असम्भव है, महान् ब्रह्मभावके अनन्त विमानमें ऊपर-नीचेका कोई भेद नहीं है। उत्प्रेक्षाके रूपमें 'अवरोह' शब्दका प्रयोग यहाँ किया गया है। गीता मानो एक उज्ज्वल वर्णमय इन्द्र-धनुषका मण्डलार्द्ध है, विश्वरूपदर्शन इस मण्डलका शिखर है।

गीताकी ब्रह्माभिमुखी तत्त्वज्ञानविवृति सम्पन्न हुई। अब जीवाभिमुख तत्त्वज्ञानका आख्यान है। जीवका जो पुरुष-भाव है। जिस भावपथका अनुसरण करके विश्वरूपमें प्रवेश किया जाता है, उसे कह चुके। इसको अध्यात्मभाव, ब्रह्मभाव अथवा भगवद्भाव भी कहते हैं। अब जीवका प्रकृतिभाव कहा जायगा। पहले पराप्रकृतिरूप भक्तियोगका द्वादश अध्यायमें वर्णन है। इस अध्यायका भक्तियोग नया नहीं है। नवम, दशम और एकादश अध्यायमें भी भक्तियोग चला है। भक्तिके कतिपय लक्षण इनमें प्रदर्शित हुए हैं। यह भी पञ्चम-षष्ठादि अध्यायोंमें पहले आभासित हुआ है।

ज्ञानयोगकी साधना करनी है। भक्तियोगकी साधना करनी है। परंतु कौन किसको जानेगा? कौन किसकी भक्ति करेगा? ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान, भक्ति-भक्त-भगवान्—दूर-दूर नहीं हैं। तीर्थयात्रा नहीं करनी पड़ेगी। दो तत्त्व युक्त—युगलरूप होकर रहते हैं। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, प्रकृति और पुरुष—ये अनादि मिलनमें मिले हुए हैं। मायाकी छायाके अन्तरालमें विच्छेद-विभ्रम होता है। यही दुःख है, यही बन्ध है, यही संसार है, यही पाप है। सब छाया—कौतुक है, इन्द्रजाल है। इस इन्द्रजाल-के प्रभावको अतिक्रमण करनेके लिये ही साधना है।

हमलोग जीवात्मा नामसे एक तत्त्व समझते हैं, परंतु ऐसा है नहीं; जीव और आत्मा—दो पृथक् तत्त्व हैं। जीव प्रकृति है, परब्रह्मकी परा प्रकृति है; आत्मा पुरुष है और इस आत्मभूत पुरुषमें भी एक द्वैतभाव है। इसका एक अंश पुरुष है और दूसरा अंश प्रकृति है; जो भगवत्स्वरूप और भगवत्-शक्ति है। गीतामें इसको स्पष्टरूपसे नहीं कहा गया है। भागवत और वैष्णवदर्शनमें यह विषय विस्तार-पूर्वक प्रकाशित और आलोचित हुआ है। गीतामें जो परा प्रकृतिकी बात कही गयी है, उसीमें ये युगल तत्त्व छिपे हैं। परा प्रकृति चिच्छाया है। यह चित् पुरुष है और छाया प्रकृति है। यह छाया ही गोपी है और यह चित् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हैं। गीतामें सब कुछ है, केवल यह बात नहीं है। परंतु फिर भी है, चतुरचूड़ामणि श्रीकृष्णने इसको कुशलता-पूर्वक अन्तरालमें छिपा रक्खा है। इसी बातको बतलानेके लिये श्रीव्यासजीने भागवतकी रचना की। गीतामें विश्वकी अन्तिम बात कह दी गयी है। देव-मानव-दर्शनका अन्तिम सिद्धान्त गीता है। परंतु इस अन्तिम सिद्धान्तके भीतर एक रहस्य छिपा था, उसीको बतलानेके लिये भागवत-पुराण है। गीता पढ़नेपर—

मने हय कि एकटि शेष कथा आछे।
से कथा हइले बला सब बला हय॥

कल्पना काँदिया फिरे तारि पाछे पाछे।
तारि तरे चेये आछे समस्त हृदय॥ ××××
मने हय कत छन्द, कत ना रागिणी।
कत ना आश्चर्य गाथा, अपूर्व काहिनी॥
जत किछू रचियाछे जत कविगणे।
सब मिलितेछे आसि अपूर्व मिलने॥

अर्थात् जान पड़ता है कि एक कथा शेष रह गयी है, उस कथाके कहनेपर सब कुछ कहना हो जाता है। कल्पना रो-रोकर उसीके पीछे-पीछे घूमती है, उसीके लिये सारा हृदय अपेक्षा करता है। कितने ही छन्द, कितनी ही रागिणियाँ, कितनी ही अद्भुत गाथाएँ, अपूर्व कहानियाँ, जो कुछ जिन कवियोंने प्रणयन किया है, जान पड़ता है वह सब इस अपूर्व मिलनमें आकर मिल जाता है जिस कथासे, वही कथा श्रीमद्भागवत है।

क्षेत्र-तत्त्व क्या है ? सांख्य-दर्शनमें जिसे लिङ्गशरीर कहा है, वही क्षेत्र है। जिसका अवलम्बन करके आत्मा संसारमें आवागमन करता है, जन्म-मृत्युके स्रोतमें बहता है, वही भोगायतन अतिवाहिक शरीर क्षेत्र है, वही जीव है। बुद्धि, अहंकार, मन, दस इन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्राएँ—इन अठारह तत्त्वोंकी समष्टिसे प्रसूत लिङ्गशरीर है। 'सप्तदशैकं लिङ्गम्'—यह सांख्यका मत है। गीता कुछ चिन्तन करके इनके साथ प्रारम्भमें अव्यक्त और अन्तमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इच्छा-द्वेष, सुख-दुःख, देह, चेतना, धृति—इन तेरह तत्त्वोंको जोड़कर इकतीस तत्त्वोंवाले क्षेत्रका निर्देश करती है। जो इस क्षेत्रके भीतर रहकर इसको जानते हैं, इसका भोग करते हैं, इससे प्रेम करते हैं, इसका शासन करते हैं, संयमन करते हैं, वे ही क्षेत्रज्ञ पुरुष हैं, वे ही आत्मा हैं, वे क्षेत्र नाम्नी प्रकृतिके साथ एकीभूत होकर रहते हैं, इस कारण अपने स्वरूपको भूल जाते हैं।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
× × × ×
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्न
अनीशया शोचति मुह्यमानः॥

जिस साधनके द्वारा पुरुष अपने तत्त्वको जान सकता है तथा श्रीभगवान्को प्राप्त कर सकता है उस साधनाकी फल-समष्टिको गीताने 'ज्ञान' नामसे अभिहित किया है। ब्रह्म इस ज्ञानका विषय है, क्षेत्रज्ञ इसका ज्ञाता है, क्षेत्र प्रकृति-सम्भूत है। प्रकृति त्रिगुणमयी है। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण हैं। सत्त्व प्रकाश करता है, आलोक लाता है; रज क्रियात्मक है, गति-शक्ति-वेग रूप (Force, energy) है। तम अवरोधक है, स्तब्धता-अन्धकाररूप (Inertia) है। चतुर्दश अध्यायमें इस त्रिगुणके गुण-दोषादिका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। इस त्रिगुणमयी प्रकृतिके अधीन होकर जीव संसारी बनता है। संसार एक अद्भुत अश्वत्थ वृक्ष है, इसका मूल ऊपरकी ओर ब्रह्ममें संलग्न है। सारी शाखा-प्रशाखाएँ निम्नाभिमुखी हैं। वैराग्यशस्त्रसे इस वृक्षको काटकर परम पदका संधान करना पड़ता है। यही परमपद ब्रह्मधाम, विष्णुपद, श्रीकृष्णलोक है। दूसरे अध्यायसे दसवें अध्यायतक अध्यात्म-साधनकी प्रणाली कही गयी है। कर्म-ज्ञान-विज्ञान-संन्यासादि योगका अनुशीलन ही इस संसारवृक्षको काटने तथा ब्रह्मपद या भगवान्के पादपद्मकी प्राप्तिके विभिन्न उपाय हैं। ब्रह्मके अधिभूत नामक क्षरभावकी बात कही गयी है। कूटस्थ अक्षरभावकी बात भी नाना प्रकारसे वर्णित है। क्षर यह विश्वजगत् है; अक्षर अनन्त-अव्यक्त, अनिर्देश्य, अचिन्त्य ब्रह्म है। इन दोनोंसे विलक्षण, इन दोनोंसे श्रेष्ठ, इन दोनोंकी प्रतिष्ठास्वरूप एक तृतीय भाव है, उसका नाम है पुरुषोत्तम। श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम हैं। जीव भक्तिमार्गके द्वारा संसारसे मुक्त होकर श्रीकृष्णके पादपद्मकी सेवा प्राप्त करता है।

जिन कर्मों, चिन्तनों, भावों तथा अन्य उपायोंके द्वारा परमात्म-साक्षात्कार प्राप्त होता है, वे ही सब बातें द्वितीयसे पञ्चदश अध्यायतक कहकर, इन सब दैवी गुणसम्पद्का विषय विस्तारपूर्वक वर्णन करके अन्तमें सोलहवें अध्यायमें भगवान्ने असुरभावका तामसिक-राजसिक चरित्रका सजीव चित्र खींच दिया है। सत्रहवें अध्यायमें सत्त्व-रज-तमोगुणके तारतम्यके अनुसार कर्म-जीवनके—जप-तप-यज्ञ-दान-व्रत-पूजा आदिके जो भेद हैं, उनका विशेष विवरण दिया है। अठारहवें अध्यायमें उपसंहार है। द्वितीयसे सप्तदश अध्यायतकके प्रतिपाद्य-प्रतिपादित सारे विषयोंको संक्षेप रूपमें तथा और भी अभिनव रूपमें अनुरञ्जित करके इस अध्यायमें सुन्दरतापूर्वक ग्रथित कर दिया गया है। सबके अन्तमें गीताका सर्वसार अन्तरतम रस, परम निष्कर्ष दो श्लोकोंमें मानो बड़े आग्रहसे, अत्यन्त स्नेहानुग्रहभावसे,

मानो अपने हृदयकी आकुलताको मिलाकर श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

यहाँ श्रीमद्भगवद्गीता समाप्त हो जाती है। 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति'—जिस तत्त्वको जान लेनेपर सब तत्त्व जान लिये जाते हैं, उसी तत्त्वको प्रतिपादित करना, प्रकाशित करना गीताका उद्देश्य है। गीता किसी तत्त्वका पृथक विचार नहीं करती। ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ॐमिति ह्युद्गायतितस्योपाख्यानम्। (श्रुति)

'ॐ' इस वर्णका नाम उद्गीथ है। इसको परमात्माकी प्रतिमा जानकर उपासना करे। ॐकार उच्चारण करके सामगान किया जाता है। इसी कारण ॐकारको उद्गीथ कहते हैं, यह उसका उपव्याख्यान है।

स एष रसानां रसतमः। परमः परार्द्धोऽष्टमो उद्गीथः॥ (श्रुति)

गीता भी उसी प्रकार सब रसोंका रस, सब तत्त्वोंका तत्त्व, सब दर्शनोंका दर्शन है। परमात्माका परमधाम यह गीता है, इसमें पृथक् रूपसे एक भी बात नहीं कही गयी है। विश्लेषणके रूपमें किसी विषयका विचार नहीं किया गया है। एक बीजसे जैसे एक महान् वृक्ष अङ्कुरित—संवर्द्धित होकर चारों ओर शत-शत शाखा-प्रशाखाओंमें पल्लवित और पुष्पित होकर विकासको प्राप्त होता है, गीता भी ठीक उसी प्रकार है। गीताका प्रत्येक अंश विकसित अङ्ग-प्रत्यङ्ग है। वह उसमें संगृहीत बहुत-सी चीजोंका एकत्र समावेश नहीं है। गीता ज्ञान-महीरुह है, तत्त्व-कल्पतरु है, प्रेम-पुष्पित पारिजात-पादप है, अमृतमयी भक्ति-कल्पलता है।

मनुष्योंसे तो ये पशु-पक्षी ही अच्छे !

[जो दया, कर्तव्य, प्रेम और स्वामिभक्ति समझते हैं]

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, दर्शनकेसरी, विद्याभूषण)

पत्र-पत्रिकाओंमें पशु-पक्षियोंके सदाचार, प्रेमके अनेक समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। यहाँ उनमेंसे कुछ पाठकोंकी जानकारीके लिये दिये जाते हैं। इनसे यह स्पष्ट होता है कि जिन जानवरोंको हम अबोध और हिंसक मानते हैं, उनकी भी सदुद्देश्योंके सम्पादनमें बड़ी प्रवृत्ति होती है। कुछ प्रसङ्ग देखिये—

स्वामिभक्त गरुड़

बाकूका एक समाचार है—

अजरबेजानके एक गडरियेके पास एक सुन्दर गरुड़ था। उस गडरियेका नाम अलीपू तथा गरुड़का नाम पेखलीवान था। यह गरुड़ उस गडरियेका चौबीस घंटेका साथी था। साथ-साथ रहते-रहते वह गरुड़ अपने स्वामीको बहुत प्रेम भी करने लगा था। वह उसके इर्द-गिर्द रहता, मानो दोनों ही सुख-दुःखके संगी-साथी हों। प्रायः सोते समय भी गरुड़ अपने स्वामीके पास रखवाली किया करता था। गडरिया भी उसे जी-जानसे चाहता था और अच्छे-से-अच्छा भोजन खिलाया करता था। बस, यह समझिये कि उनके दो शरीर और एक आत्मा थी।

एक दिनकी बात है। संयोगसे दिनभरके कामसे थककर बेचारा गडरिया खेतके किनारे एक छायादार वृक्षके नीचे विश्राम कर रहा था। उसकी भेड़ें समीपकी कँटीदार झाड़ियोंमें चर रही थीं। गरुड़ पास ही बैठा था। गडरियेकी आँख लग गयी और वह गहरी निद्रामें सो गया। अचानक गरुड़की तीखी आँखोंने देखा कि समीपके एक बिलसे एक साँप निकला। वह कुछ देर इधर-उधर देख गडरियेको सोते पाकर उधर ही बढ़ा। सर्प बड़ा जहरीला था। गरुड़को तुरंत ऐसा लगा कि यह विषैला सर्प उसके प्रिय स्वामीको काट लेगा और उसकी जीवन-लीला समाप्त हो जायगी।

गरुड़ फौरन उड़ा, सर्पपर निशाना बाँधा और अपनी चोंचसे उसपर आक्रमण कर दिया। थोड़ी देरतक सर्प इस आकस्मिक आक्रमणको पहचान न सका। वह कभी इधर, तो कभी उधर भागता। इतनेपर भी जब वह दुष्ट सर्प न माना, तो गरुड़ने उसे अपनी तीखी चोंचमें उठा लिया। घायल सर्प भी प्रतिशोधकी भावनासे तिलमिला रहा था। चोट खाये हुए सर्पने अपनेको गरुड़के चारों ओर लपेट लिया। यह द्वन्द्व चल ही रहा था कि शोर सुनकर गड़रिया जाग उठा।

किंतु तबतक उस स्वामिभक्त गरुड़के प्राणपखेरू उड़ चुके थे। सर्प भी अधमरा हो चुका था। गडरियेने उसे मार डाला। गरुड़के बलिदानकी कहानी वहाँके लोगोंमें चर्चाका विषय है। जानवरोंमें भी अपने स्वामीकी रक्षाका भाव पाया जाता है।

चीलझपट्टा

समस्तीपुर (विहार) का एक अद्भुत समाचार प्रकाशित हुआ है। अंगारघाट चिकित्सालयमें कार्य करनेवाली एक नर्सके कागजमें लिपटे हुए प्रमाणपत्रों एवं नियुक्तिपत्रको रोटीके टुकड़ेके संदेहमें एक चील झपट्टा मारकर ले उड़ी।

बात यों हुई कि नर्स वहाँ गुदड़ी बाजारमें स्थित अपने मकानकी छतपर उक्त प्रमाणपत्रोंको दिखलानेके लिये खोल रही थी। चीलने समझा कि वह रोटीकी पोटली खोल रही है और भोजन पानेकी तैयारी कर रही है। वह थोड़ी देर ऊपर उड़ी, फिर एक ही झपट्टेमें पूरा पैकेट पंजोंमें लेकर आकाशमें उड़ गयी।

नर्सकी तो जैसे जान ही निकल गयी। उसके इन प्रमाणपत्रोंपर ही उसकी नौकरी आधारित थी। वह बड़ी परीशान हुई। देरतक आकाशमें उड़ती हुई उस दुष्टाका उड़ना देखती रही। उसकी आँखें वह जिधर जाती, उधर ही लगी रहीं, वह मन-ही-मन प्रार्थना कर रही थी कि पैकेट किसी प्रकार छूटकर उसकी छतपर आ गिरे तो कितना अच्छा हो। उसका खोया हुआ खजाना उसे फिर मिल जाय। पर हाय ! ऐसा न हुआ। चील आँखोंसे ओझल हो गयी। निराश और विक्षुब्ध हो दुखी नर्स बदहवास हो मकानकी छतपर बैठ गयी।

वह अपने दुर्भाग्यपर दोनों हाथ मल-मलकर परीशान हो रही थी। न जाने उस चीलने वे बहुमूल्य प्रमाणपत्र और नियुक्तिपत्र कहाँ फेंके होंगे।

लगभग एक घंटेतक वह भगवान्की प्रार्थना करती रही।

आश्चर्यकी बात है कि कोई आध घंटेमें वही चील उड़ती-उड़ती फिर उसी मकानकी छतपर उस पैकेटको गिरा गयी। कुछ देर उड़कर उसने ऐसा निशाना बाँधकर उस पैकेटको गिराया कि वह उसी छतपर गिरा। अपना खोया हुआ प्रमाणपत्रोंका पैकेट पाकर वह नर्स उस उपकारी चीलकी बुद्धिकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी। पैकेटमें कई जगह चोंच मारकर चीलको मालूम हो गया था कि उसमें खाने योग्य कोई वस्तु नहीं थी। अपनी गलतीपर दुखी होकर वह फिर उसी मकानकी छतपर उड़ती हुई आयी और लिपटे हुए कागज वापस पटक गयी।

गलती कभी भी सुधारी जा सकती है। यह संसार ईमानदारी और सज्जनताकी नींवपर ही टिका हुआ है। पक्षीतक परोपकार करते हैं, फिर परमार्थकी दैवी प्रवृत्ति मनुष्यकी तो सबसे प्रमुख वृत्ति है।

कीर्तनप्रेमी सर्पने सबको आश्चर्यमें डाला

देवरियाका एक समाचार यों प्रकाशित हुआ है—

घटना जनपदकी तहसील सलेमपुरके अन्तर्गत ग्राम माड़ोपारकी बतायी गयी है। वहाँके ग्रामप्रधानने इस घटनाका समाचार भेजा है।

सूचनाके अनुसार ११ जनवरी ६५ को उस ग्राममें एक अखण्ड कीर्तन था। भक्तमण्डली तन्मय भावसे भगवान्का पूजनकर धार्मिक भजन गा रही थी। चारों ओर भक्तिरसका पवित्र वातावरण छाया हुआ था। श्रोतासमाज भी मधुर-स्वरमें भजन गुनगुना रहा था। पवित्र दैवी वातावरणमें जैसे दुष्कर्म, दुष्ट हिंसक भावनाएँ दब गयी थीं। पापाचारी पुरुषोंकी कठोर वृत्तियाँ मानो नष्ट हो गयी थीं। ईश्वरकी प्रार्थनामें द्वेष और दुर्गुण मानो दूर हो गये थे। पाप और मल-विकार गायब हो गये थे। इसी बीच संगीत-माधुर्यसे प्रभावित एक सर्प न जाने कहाँसे आया और अखण्ड कीर्तनके मञ्चपर चढ़ गया। औरोंकी तरह वह भी वहीं फन ऊँचा किये बैठ गया।

पहले तो सब बड़े भयभीत हुए, किंतु उस भक्त सर्पने किसीको कुछ भी परीशान न किया। वह तन्मय हो चुपचाप कीर्तन सुनता रहा, भाव-विभोर होता रहा। गाँववालोंने जब यह सुना तो उसके दर्शन करनेवालोंका ताँता बँध गया। कीर्तन पूर्ववत् चलता रहा, कीर्तनप्रेमी सर्प बिना हिले-डुले भक्तिरसका आनन्द लेता रहा। वह वैसे ही बैठा रहा। न थका, न ऊबा ! कीर्तन समाप्त होते ही वह जल्दीसे न जाने कहाँ रफूचक्कर हो गया। गाँववालोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

कहा भी है—

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः।
अति द्वेषांसि तरेम॥ (ऋग्वेद ३। २७। ३)

अर्थात् जिन्हें मोक्ष-प्राप्तिकी कामना हो, उन्हें चाहिये कि वे द्वेष और दुर्गुणोंसे बचकर धर्मपथपर चलते रहें। इसके लिये उन्हें विद्वान् पुरुषोंका सत्सङ्ग करना चाहिये और उत्तम रीतियोंको धारण करना चाहिये।

स्वामिभक्त गधा

अलवर (राजस्थान) की एक घटना विस्मयका कारण बनी हुई है।

ईदू नामक एक मुसल्मान धोबी जयसमंद तालाबपर कपड़े धो रहा था। यह उसका नित्यप्रतिका कर्म था। उसका जुम्मी नामक गधा भी प्रतिदिन उसके साथ घाटपर भीगे कपड़े ढोकर ले जाया करता था। दोनों प्रतिदिन साथ ही मेहनत करते थे। जब ईदू तालाबमें कपड़े धोता रहता, जुम्मी पास ही घास चरता रहता था। बहुत दिनोंतक साथ-साथ रहनेके कारण ईदू और जुम्मी एक दूसरेकी आदतोंसे भलीभाँति परिचित हो गये थे। सुख-दुःखको पहचानते थे। वे एक-दूसरेकी भाषाको चाहे न समझते हों, किंतु भावोंकी गुप्त मूक भाषासे—एक दूसरेके मनोभावोंसे पूर्ण परिचित रहते थे।

एक दिन ईदू कुछ जल्दीमें था। घबराहटमें उसे ऐसा लगा जैसे कोई कछुवा जलमें हो। डरकर वह यकायक निकलने लगा तो बेचारेका पाँव फिसल गया।

पानी काफी गहरा था। दुर्भाग्य यह हुआ कि धोबी जलमें तैरना भी नहीं जानता था। अब ईदू पानीमें छटपटा रहा था। जोर-जोरसे 'जुम्मी! जुम्मी!!' चिल्ला रहा था। पता नहीं कैसे गधेको यह आभास हुआ कि उसका मालिक खतरेमें है और उसकी मदद चाहता है। वह क्या करे? किसे सहायताके लिये पुकारे?

उसने पानीमें छलाँग लगा दी और तैरकर अपने स्वामीके पास जा पहुँचा। ईदूने उसकी पूँछ पकड़ ली और उसके सहारे अपनी जान बचा ली।

अब ईदू और जुम्मी दोनों किनारेपर खड़े थे। जुम्मीको प्रसन्नता थी कि उसने अपने स्वामीकी प्राणरक्षा कर ली थी।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः॥ (अथर्ववेद २। १५। १)

अर्थात् पृथ्वी, आकाश (पशु-पक्षी, कीट-पतंग) इत्यादि परमात्माके अनुसार सदैव जगत्का उपकार करते रहते हैं, वैसे ही धार्मिक वृत्तिवाले श्रेष्ठ पुरुषको भी चाहिये कि वह पापोंको त्यागकर सुकर्मोंद्वारा लोकोपकारके काम करे और इस प्रकार परोपकारके कामोंद्वारा निर्भय और सुखी रहे।

मैनाने चोरोंको भगाया

न्यूयार्कका एक समाचार है—

जार्जियामें एक फर्नीचरकी दूकानसे सेंध मारनेवालोंको खाली हाथ लौट जाना पड़ा। घटना इस प्रकार बतायी जाती है कि फर्नीचरकी उक्त दूकानमें चोरोंने सेंध मारी तो अचानक ही उन्हें बड़ी जोरकी आवाज सुनायी दी—

'आप क्या चाहते हैं? आप क्या चाहते हैं? आप क्या चाहते हैं?' आवाज काफी तेज थी, जैसे कोई मानव-स्वर बोल रहा हो।

चोरोंको यकायक यह डर लगा कि लोग जाग पड़े हैं और वे अब पकड़ लिये जायँगे। पहले तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि कहाँसे यह आवाज आ रही है। वे कुछ देर इधर-उधर देखते रहे। फिर भी आवाज आती रही। आखिर खतरेसे डरकर वे ताबड़तोड़ भागे।

बादमें मालूम हुआ कि वहाँ कोई भी आदमी मौजूद नहीं था। यदि चोर चाहते, तो सारा रुपया चुरा ले जाते।

आवाज देनेवाली एक भारतीय मैना थी। उसका स्वर पुरुषकी तरह साफ था। वह बिल्कुल आदमीकी तरह एक ही वाक्य बोलना जानती थी, 'आप क्या चाहते हैं?'

दूकानके मालिकने केवल ग्राहकोंसे यह वाक्य कहलवानेके लिये उस मैनाको दूकानपर रक्खा था।

लखनऊमें कुत्तोंकी गश्त

लखनऊका एक समाचार है। गतवर्ष अपराधोंकी रोक-थामके लिये रातको पुलिसके सुराग लगानेवाले कुत्तोंकी गश्त भी जारी कर दी गयी है। यह गश्त खुफिया पुलिसने सिविल पुलिसके सहायतार्थ आरम्भ की है।

प्रयोगके रूपमें की गयी यह गश्त सफल रही है। कुल ६ कुत्ते गश्तमें लगाये गये हैं, जो दो-दो करके रोज अदल-बदलकर अमीनाबाद और गणेशगंजमें गश्त लगाते बताये जाते हैं। कहते हैं पिछले दिनों इन कुत्तोंकी सुरागपर रेलवेकैन्टीनके कर्मचारी कल्लूको पकड़ लिया गया, जो कैन्टीनकी तिजोरी तोड़कर चार सौ रुपये नकद और बहुत

सा सामान चोरी करके जा रहा था। बताया गया है कि ये चतुर कुत्ते हेड कानेस्टबिल कुँवर बहादुरसिंह, मोहम्मदकासिम और देवीदत्तके हमराहमें थे।

परमात्माने कुत्तों-जैसे पशुओंतकको कितनी समझ-बूझ दी है कि वे सज्जन और दुर्जनमें विवेक कर सकते हैं। चोरों और डकैतोंको पहचान सकते हैं।

> यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति
> यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
> द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते
> राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः॥
> (अथर्ववेद ४।१६।२)

'मनुष्य कितना ही छिपकर पाप क्यों न करे, परमात्मा उसे जान लेता है और उसका उचित दण्ड भी देता है। इसलिये समझदार मनुष्यको हर प्रकारके पापसे सदैव बचते रहना चाहिये।'

> असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेति महद्व्यचः।
> तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु॥
> (अथर्ववेद ४।१९।६)

'दुष्टतापूर्ण कर्म चाहे छोटे हों अथवा बड़े अन्तमें करनेवालोंका सर्वनाश करते हैं। उनका प्रतिफल उन्हें ही भोगना पड़ता है।'

कुत्तोंद्वारा अंधोंका मार्ग-दर्शन

नयी दिल्लीसे एक समाचार मिला है। कुत्ते मनुष्यके सर्वोत्तम मित्र होते हैं; यही नहीं, अंधोंके लिये वे अच्छे मार्गदर्शक भी हो सकते हैं। कई देशोंमें प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रशिक्षित कुत्ते अंधोंके लिये अत्यन्त सहायक सिद्ध होंगे। प्रशिक्षित कुत्ता अंधे मनुष्यका कहीं भी जानेके लिये मार्ग-दर्शन कर सकता है, बशर्ते एक बार पहले वह वहाँ हो आया हो। यहाँतक कि कुत्ता अंधे मनुष्यके साथ विश्वास एवं सुरक्षापूर्वक बस-यात्रा करनेमें भी सहायक हो सकता है। भारतमें अंधोंके प्रति द्रवित होकर श्वान-आवास क्लबने एक योजना बनायी है, जिसके अन्तर्गत अंधोंकी सहायता देनेमें कुत्तोंको प्रशिक्षित करनेके लिये शीघ्र ही एक प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित किया जायगा। संसारभरमें सबसे अधिक बीस लाख अंधे भारतमें हैं।

जब पशुतक अनेक उपयोगी तत्त्वोंमें मनुष्यका पथ-प्रदर्शन करते हैं, तब बुद्धि रखनेवाले मनुष्यका भी यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि वह भूले-भटकोंको सत्य, न्याय, विवेक और कर्त्तव्यका मार्ग दिखलाता रहे। हम मानव-जीवनकी विशाल सम्भावनाओं और सदुद्देश्योंको समझें और उसकी विशेषताओंका सदुपयोग करते हुए भौतिक और आध्यात्मिक प्रगतिका मार्ग प्रशस्त करें। भगवान्ने हमें अन्तरात्मा और विवेक दिये हैं, तो उनका उपभोग इस प्रकार करें कि हम वस्तुतः समझदार और सच्चे बुद्धिमान् भी कहला सकें। हम दूसरोंका अधिक-से-अधिक उपकार और सेवा करें, निःस्वार्थ भावसे सेवा करें। पुण्य परमार्थकी दृष्टिसे ही किया जाना चाहिये। पशु-पक्षी अपने उपकारोंका कोई बदला नहीं चाहते, उसी प्रकार हम भी अपने पुण्य-परमार्थका बदला न चाहें। बदलेका भाव आते ही प्रत्येक सेवा व्यावसायिक हो जाती है।

भगवान् ही रक्षक

फफूँद (इटावा) का एक समाचार है। यहाँ उस समय लोग आश्चर्यचकित रह गये, जब श्रीरामनारायणके यहाँ लोग आरा मशीनपर बीस दिन पहले ही डाली गयी एक लकड़ीकी सिल्लीमेंसे दो तोतेके बच्चे जीवित निकल पड़े। उनके बचनेकी कोई आशा नहीं थी। उन्होंने तोतेके बच्चोंकी रक्षा करते हुए पास ही बैठा एक सर्प भी देखा। सर्प तो आरा मशीनकी भेंट चढ़ गया, पर उसने तोतेके उन निरीह बच्चोंको न मरने दिया। शुभ कार्यमें किया हुआ यह बलिदान किसी युद्धमें शहीद होनेसे क्या कम है!

> सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
> तथाऽऽत्मानं समाधत्स्व भ्रश्यसे न पुनर्यथा॥

याद रखिये, सुरदुर्लभ मानव-शरीर जो बड़े पुण्योंसे प्राप्त होता है, स्वर्ग-प्राप्तिका सोपान है। इसे शुभ कर्मोंमें ही लगाना चाहिये, ताकि मनुष्य अवनति, पथभ्रष्टता और पतनकी ओर अग्रसर न हो सके।

भक्त गाय

पाली (राजस्थान) जिलेमें और उसके आसपासके गाँवोंमें एक भक्त गायकी चर्चा बच्चे, बूढ़े और जवान—हर किसीसे सुननेको मिल सकती है। पालीसे १३ मील दूर पूनागर गाँवमें एक छोटी-सी पहाड़ी—टेकरी है। उसपर दुर्गा देवीका एक छोटा-सा मन्दिर है। इसी गाँवकी एक गाय प्रतिदिन ऊँची पहाड़ी चढ़कर दुर्गाके पवित्र मन्दिरमें जा पहुँचती है और भक्तिभावसे मन्दिरके सामने बैठी रहती है।

चाहे मौसम कैसा भी हो, अपने घरसे खुलते ही वह पहले मन्दिरमें दर्शनोंके लिये अवश्य जाती है। गायके मालिकने उसकी इस भक्तिभावनामें कई बार बाधा डालनेका प्रयत्न किया है, किंतु गाय कभी नहीं मानी। सात वर्षोंसे उसका यह दर्शन करनेका क्रम निरन्तर चल रहा है। उसे देखनेके लिये सैकड़ों लोग वहाँ आते हैं और कुछ खाद्य पदार्थ भेंट करते हैं। कहते हैं यह गाय आजतक गर्भवती नहीं हुई है। भक्त कन्याकी तरह यह कामवासनासे सर्वथा दूर रहकर दुर्गाकी आराधनामें निमग्न है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥
(४। ३९)

याद रखिये, साधनपरायण, इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखनेवाले, श्रद्धावान् व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त करते हैं और इस प्रकार ज्ञानप्राप्त व्यक्ति ही परमात्माको प्राप्त करते हैं। भक्ति क्षणिक भावुकताका या आवेशका नाम नहीं है, वरं साधनाकी कठिनाइयोंको झेलनेकी कसौटी है। आवेशपूर्ण श्रद्धासे जीवनमें कोई लाभ नहीं होता। किंतु जो लोग दृढ़तापूर्वक साधनकी कठिनाइयोंको सहन करते हैं, उनकी श्रद्धा और भी तेजस्विनी बनती है और मनपर तथा इन्द्रियोंपर संयम करना आसान हो जाता है।

बंदरोंने तोतेके बच्चेको पाला

शाहबाजपुरके निकट कलड़ी गाँवसे बंदरोंद्वारा एक तोतेके बच्चेके पालनेके समाचार मिले हैं। बताते हैं कि एक दिन एक बाजने तोतेके एक बच्चेपर झपट्टा मारा। मामूली खरोंचके बाद बचा बच गया, किंतु दुष्ट हिंसक बाजके लगातार झपट्टोंके कारण उसके लिये अपनी जान बचाना मुश्किल हो गया।

यह सारा दृश्य वहाँ विद्यमान बंदरोंका एक दल देख रहा था। एक मोटा-ताजा बंदर आगे बढ़कर तोतेके बच्चेके पास आया, तो नयी मुसीबत आयी जान प्राणोंकी भिक्षा माँगनेके स्वरमें वह तेजीसे चें-चें, चें-चें करने लगा। बंदरने दयाभावसे प्रेरित होकर उसे आहिस्तेसे पकड़ लिया। उसे प्यारसे सीनेसे चिपकाया। बच्चेका गुप्त भय दूर हुआ तो उसने चिल्लाना बंद कर दिया। दूसरे बंदर भी दयार्द्र हो उठे। वे पाससे कुछ पके बेर तोड़ लाये और बच्चेको बड़े वात्सल्य भावसे खिलाया। दुष्ट बाज बड़ी देरतक अपने शिकारकी खोजमें चक्कर काटता रहा, पर बंदरोंने उस बच्चेको बचाया रक्खा। अन्तमें बंदरोंद्वारा उसे पूर्ण सुरक्षित जानकर वह निराश होकर उड़ गया।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ती यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूँषि कल्पयैपाम्॥
(ऋग्वेद १०। १८। ५)

मनुष्यो! हमारा जीवन-क्रम इस प्रकार चले, जैसे दिनके बाद दिन और ऋतुके बाद दूसरी ऋतु आती है। कभी कोई छोटी आयुवाला बड़ी आयुवालेके सामने न मरे।

भैंसने गायका बछड़ा पाला

मुरसावाद (मध्यप्रदेश) से श्रीजसवंतसिंह यादवने समाचार दिया है कि उनकी गाय एक बछड़ेको जन्म देनेके बाद किसी बीमारीके कारण मर गयी। अब उसे कौन दूध पिलाये? कौन पाले? बिना दूध पिये बछड़ेका जीवन बड़े खतरेमें था। निरीह और अबोध बछड़ेको देखकर सब परीशान हुए।

संयोगसे वह बछड़ा एक भैंसके पास था, जो दूध देती थी। बछड़ा उठा और उस भैंसके थनोंमें दूध पीने लगा। सबको डर था कि भैंस उसे लात मारकर दूर पटक देगी, पर भैंसका वात्सल्य जग उठा! बछड़ेको मारनेके स्थानपर उसने बड़े प्यारसे उसे चाटना शुरू किया। बछड़ा दूध पीता रहा और भैंस उसे चाटती रही। बछड़ा अपनी माताके मरनेका सारा दुःख भूल गया। आश्चर्यकी बात यह है कि उस भैंसके खुद उसका पाड़ा भी है। दोनों ही उसका दूध पीते हैं और उसे माँ मान रहे हैं।

कौएकी दयालुता

कुछ दिन पूर्व रोडेशियाकी घटना है, एक छोटा-सा कुत्तेका बच्चा भटककर जंगलमें चला गया और वहाँ एक दलदलमें फँस गया। दुर्भाग्यसे वहाँ उसकी सहायताके लिये कोई भी नहीं पहुँचा। वह निकलनेके लिये छटपटाता रहा, भूखसे व्याकुल हो गया; पर किसीने उसकी खबर न ली।

छः दिनतक वह जीवन और मौतके बीचमें झूलता रहा। भूखसे उसकी अँतड़ियाँ सूख रही थीं। ईश्वरकी अनुकम्पा देखिये, कुत्तेके बच्चेकी यह दर्दनाक हालत डाल-

पर बैठे हुए एक कौएने देखी। उसका नन्हा-सा मन दयार्द्र हो उठा। वह प्रतिदिन शहरसे रोटीके टुकड़े ला-लाकर उस कुत्तेको खिलाता और उसके जीवनकी रक्षा करता रहा।

कौएको बार-बार जंगलकी ओर रोटी ले जाते देख चरवाहोंको बड़ा कौतूहल हुआ। वे उसके पीछे-पीछे गये, तो उन्हें कौआ रोटीके टुकड़े कुत्तेके पास डालता हुआ मिला। उसीसे वह कुत्ता जीवित बचा रहा था।

चरवाहे कौएकी दयालुताको देखकर नतमस्तक हो गये। कुत्तेको दलदलमेंसे निकाला गया और शहर भेज दिया गया, किंतु कौएकी दयालुता लोगोंके हृदयमें घर कर गयी।

अव जहि यातुधानानव कृत्याकृतं जहि।
अथो यो अस्मान् दिप्सति तमु त्वं जह्योषधे॥
(अथर्ववेद ५। १४। २)

अन्न जैसे भूख मिटाता है, वैसे सद्‌गुणको अपने जीवनमें धारणकर हम दोष-दुर्गुणोंको दूर भगायें।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजम् प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामसुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥
(ऋग्वेद १। ११२। ८)

अर्थात् समाजमें जो भी अपाहिज, अंधे, लँगड़े, लूले (बीमार, दुर्बल, निर्धन, क्षतिग्रस्त) आदि हों, वे हमारी घृणाके पात्र नहीं हैं। हमें उन्हें अपना बन्धु मानना चाहिये और उनके साथ भी दयालुताका व्यवहार करना चाहिये। हम सभी ईश्वरके एक विशाल परिवारके सदस्य हैं। सबमें समान रूपसे प्रेमभाव रहना चाहिये।

जो मनुष्य दीन-दुखी और गिरे हुएको ऊपर उठानेमें कठिनाई और बाधाओंसे घबराता नहीं, उसकी रक्षा परमात्मा करता है।

काम (ऐन्द्रिय भोगों) का प्रयोजन

[कहानी]

(लेखक—श्री'चक्र')

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता॥
(श्रीमद्भा० १। २। १०)

'वरं ब्रूहि!' उस दिन उस नीरव रात्रिमें पता नहीं क्यों उसकी निद्रा टूट गयी। वैसे वह इतनी गाढ़ निद्रा सोता है कि सिरपर ढोल बजे तो कदाचित् नींद टूटे। पूरा कक्ष प्रकाशित था और एक देवता उसके समीप खड़े थे। देवता इसलिये कि प्रकाश उनके शरीरसे ही निकल रहा था—जैसे किसी धुएँके समान प्रकाशित पदार्थके द्वारा उनकी देहका निर्माण हो। साथ ही वे उसे वरदान माँगनेको कह रहे थे—वरदान माँगनेको या तो कोई देवता कहेगा या ऋषि। वे ऋषि नहीं हो सकते, क्योंकि ऋषियोंके जटा-जूट होते होंगे और वे इतने रत्नाभरण धारण क्यों करने लगे।

'धन्यवाद!' वह भी अद्भुत अक्खड़ है—ऐसा कि आपको ऐसे अक्खड़ जीवनमें कम मिले होंगे। शय्यापर उठकर बैठ गया था वह; किंतु उसने उठकर खड़े होने, देवताकी वन्दना-अभ्यर्थना करनेका कोई उपक्रम नहीं किया। भय भला क्या लगना था—जो वरदान माँगनेको कह रहा था, उससे भयकी तो कोई बात भी नहीं। वैसे भी उसे भय लगता होता तो सर्वथा एकाकी पर्वतपर अन्य गृहोंसे दूर वह आवास स्वीकार नहीं करता।

'मैंने तो आपको बुलाया नहीं था। आपसे कभी कोई प्रार्थना मैंने भूलसे भी नहीं की होगी।' देवता खड़े थे और अपने शयनके आसनपर बैठे-बैठे ही वह उनसे कहे जा रहा था। साथ ही ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपरतक देवताको देख रहा था बार-बार; उसने जो पढ़ा-सुना है, उसमेंसे कोई लक्षण मिल जाय तो

देवताको वह पहचान ले। देवताके चरण भूमिका स्पर्श नहीं कर रहे थे—इसके अतिरिक्त और कोई लक्षण उसे ऐसा नहीं मिला, जिससे वह उनका नाम जान सकता। अतः बोला—'आपको स्वीकार हो तो आसन ग्रहण कर लें और मैं जल पिला दे सकता हूँ।'

परिचय उसने पूछा नहीं। नाम-धाम-काम, वह किसीसे भी मिले, पूछना उसके स्वभावमें नहीं है। लोग उससे पूछते हैं तो उसे झल्लाहट ही होती है; किंतु देवता—देवताका परिचय जानना भी उसे आवश्यक नहीं लगा। अपने तख्तेपर (क्योंकि वह तख्तेपर ही सोया था) एक ओर थोड़ा खिसक गया, जैसे देवताको बैठना हो तो उसीके बराबर बैठ जाय। ऐसे देवताको आसन दिया जाता है ? देवता क्या प्यासा आया होगा उसके यहाँ पानी पीने ? किंतु यह बात भी सच है कि उसके पास देवताको भेंट करनेके लिये उस समय कुछ नहीं था। दूसरा तृण्ना भी कमरेमें नहीं था और न मुखमें डाला जा सके, ऐसा कोई पदार्थ था। रात्रिमें पुष्पका तो प्रश्न ही नहीं उठता। आप कह सकते हैं—'उसे उठकर खड़े हो जाना था। जल हाथमें लेकर निवेदन करना था।' यह सब उसने नहीं किया। उसे यह आवश्यक नहीं जान पड़ा।

'वरं ब्रूहि !' देवताने भी जैसे दूसरा वाक्य सीखा ही न हो। उन्होंने आसन ग्रहण नहीं किया। जलकी उन्हें आवश्यकता नहीं थी। वैसे देवताको सदा मनुष्यके दानकी आवश्यकता होती है। मानवका श्रद्धा-दान, हव्य-कव्य न मिले तो स्वर्ग और पितृलोकमें दुर्भिक्ष पड़ जाय। इसलिये देवताको मनुष्यसे अपेक्षा नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

मनुष्य देवताओंको तृप्त करे हवन-पूजनादिसे और देवता यथावत् वृष्टि, वायु, महामारी आदिका नियन्त्रण करके मनुष्यको सुखी-समृद्ध बनाते रहें—व्यवस्था यही है। केवल परमात्मा पूर्णकाम, नित्य निरपेक्ष है। उसे मनुष्य जो कुछ देना चाहता है—देनेका उद्योग करता है, वह अनन्तगुणित होकर लौट आता है उसीके समीप; किंतु देवता तो ऐसे नहीं हैं। अतः उसका भाव था—'तुम वरदान देने आये—मुझे वरदान चाहिये कि नहीं, यह भिन्न प्रश्न है; किंतु मैं तुम्हें जल पिला दे सकता हूँ, यदि तुम पीना चाहो।'

देवताको प्यास नहीं होगी। पर्वतोंमें ग्रीष्ममें भी शीत रहता है। वहाँ रात्रिमें उसे भी प्यास कभी नहीं लगती और सुना है कि देवताओंकी क्षुधा-पिपासा मनुष्यसे सर्वथा भिन्न होती है। वे भोज्य वस्तुओं एवं जलको भी केवल सूँघकर तृप्त होते हैं। मुखसे खाने-पीनेकी आवश्यकता उन्हें नहीं होती।

देवता भी हो और चोर भी हो, ऐसा नहीं हुआ करता। इसलिये जबतक कोई मनुष्य अपनी ईमानदारी-से उपार्जित वस्तुको देवताके अर्पण न करे अर्थात् श्रद्धा-प्रेमसे अपने ठीक स्वत्वकी वस्तुको ग्रहण करनेका अधिकार देवताको न दे, देवता कोई पार्थिव वस्तु ग्रहण नहीं कर सकता—उसे सूँघ नहीं सकता। उसने देवताको जल पिलानेकी बात कही थी। देवता प्यासा होता तो उसके लोटेमें भरे जलको बिना स्पर्श किये घ्राण-ग्राह्य बना ले सकता था।

'वरं ब्रूहि !' देवताको पता नहीं क्यों वरदान देनेकी धुन चढ़ी थी और वह चाहता था कि वरदान देकर झटपट चला जाय; किंतु जिसे वरदान लेना था, उसे कोई शीघ्रता या तत्परता उसमें नहीं जान पड़ती थी।

× × ×

'वह कौन है ?' आप अवश्य जानना चाहते होंगे; किंतु नाम-धाम-काम कोई पूछे तो उसे झल्लाहट होती

है । कहता है—'व्यक्तिका क्या परिचय ? कल उत्पन्न हुआ, परसों मर जायगा । मिट्टीके डलेको एक आकार मिल गया—इस खिलौनेका भी कोई परिचय हुआ करता है ?'

'तुमने साधुवेष क्यों ग्रहण नहीं किया ?' एक महात्माने उससे एक बार पूछा था । पूछना उचित था; क्योंकि जिसके कुल-परिवारमें कोई नहीं, जिसकी कहीं कोई झोंपड़ीतक नहीं, वह क्यों अपनेको गृहस्थ कहता है ? वह धोती, कमीजमें क्यों रहता है ? समाजकी वर्तमान परिपाटीको देखते उसे ऐसे ढंगसे क्यों रहना चाहिये ?

'मैं क्यों साधुवेष ग्रहण करता ? क्या प्रयोजन था इसका ?' उसने प्रश्नके उत्तरमें प्रश्न कर लिया था । कहा न कि वह अद्भुत अक्खड़ है । कहने लगा—'सहज प्राप्त 'क्यों है ?' यह प्रश्न अनुचित है । 'उसमें परिवर्तन क्यों किया जाय ?' प्रश्न यह ठीक है ।'

'दूसरे साधुवेष किसी प्रयोजनसे ग्रहण करते हैं ?' महात्माने पूछा ।

'दूसरोंकी बात मैं कैसे कह सकता हूँ ।' वह बोला । 'वैसे साधुवेष-ग्रहणके चार प्रयोजन मेरी समझमें आते हैं । उत्तम प्रयोजन—संसारसे वैराग्य हो गया हो और कुटुम्ब-परिवारका बन्धन अन्तर्मुख होनेमें बाधा दे रहा हो । मध्यम प्रयोजन—आसक्ति कहीं हो नहीं और साधन-भजन करनेमें पूरा समय लगाना हो । शरीर-निर्वाहके लिये अप्रयास भिक्षा मिल जाया करे । निकृष्ट प्रयोजन—योग्यता हो या न हो, किंतु दूसरोंसे सम्मान पाने, पैर पुजवानेकी इच्छा प्रबल हो । अधमतम प्रयोजन—सम्मान-सम्पत्ति, भोग भरपूर चाहिये; किंतु कुछ उद्योग करनेकी इच्छा-शक्ति न हो ।'

जिसके कुटुम्ब-परिवार, घर-द्वार, कोई है ही नहीं, उसके लिये इस बन्धनसे छुटकारेका प्रश्न नहीं उठता था । शरीर-निर्वाहके लिये उसे जितना कम श्रम करना पड़ता है, जितनी स्वच्छन्दता उसके श्रममें है, उतना तो भिक्षाजीवीको भी करना ही पड़ता है । सम्मान उसे सहज प्राप्त है और संग्रहकी सनक उसे है नहीं । वह कहता है—'मैं प्रायः अस्थिर रहता हूँ । एक तौलिया भी अधिक रख लूँ तो उसे ढोते फिरना होगा । बात त्यागकी नहीं है, समझदारी-की है । जितनेसे ठीक-ठीक जीवन-निर्वाह हो जाता है—सुखसे, सुविधासे, सामाजिक शिष्टताको रखते हो जाता है, उतना रखता हूँ । अधिकको ढोते फिरनेकी मूर्खता नहीं कर सकता ।'

अब किसके मुखमें दो हाथकी जिह्वा है कि उससे कहेगा—'बिना साधुवेष लिये ज्ञान नहीं होता या भगवत्प्राप्ति नहीं होती ।'

'भाई मेरे ! ज्ञान या भगवद्दर्शन मनुष्यको होता है, कपड़ेको नहीं,—यह उसकी बात ठीक नहीं है; ऐसा तो न कोई शास्त्र कहता और न किसी संतने कभी कहा है ।'

'भोगे रोगभयं'—अधिक जिह्वा-लोलुप बनोगे तो पेट खराब हो जायगा और सामान्य रसास्वादके सुखसे भी वञ्चित कर दिये जाओगे !

अधिक काम बढ़ेगा तो वह शक्ति प्रकृति छीन लेगी । स्नायु-दौर्बल्य, हृदय-दौर्बल्य एवं और पता नहीं कितने कष्टसाध्य—असाध्य रोगोंकी भीड़ खड़ी है कि तुम इस ओर बढ़ो और वे बलात् तुम्हारी देहको अपना आवास बना लें ।

'भोग जीवनके लिये हैं, जीवन या देह भोगके लिये नहीं है ।' यह या ऐसी बातें हम-आप सबने पढ़ी-सुनी हैं । इनको जीवनमें किसने कितना अपनाया है, यह भिन्न बात है । किंतु यह सत्य तो

स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिसने जितना अधिक इन्हें अपनाया है, उतना स्वस्थ एवं सुखी है वह। जिसने जितनी इनकी उपेक्षा की है, वह उतना रोगी—दुखी है।

उसका अपना ढंग है। कहता है—'अनावश्यक संग्रह करके उसकी चिन्ता करते रहना और उसे ढोते फिरना मूर्खता है। मैं अपने आपको स्वयं मूर्ख नहीं बना सकता। इससे भी बड़ी मूर्खता है किसी इन्द्रियके पीछे इतना पड़ना कि उसकी शक्ति—उसकी उपयोगिता ही नष्ट हो जाय। एक समय जीभके बहकावेमें जो आया—दूसरे समयके उपवाससे ही उसका छुटकारा हो जाय तो बहुत कुशल हुई। अन्यथा पेट-दर्द, सिर-दर्द आदि पता नहीं क्या-क्या उपहार सिर पड़नेवाले हों।'

'इन्द्रियाँ शैतानकी पुत्रियाँ हैं। इनके बहकावेमें आये और यहीं रोगोंका नरक तैयार।' उसका अपना विवेचन है। 'इन्द्रियोंकी तृप्ति तो कभी होनेकी नहीं, यह वे कहते हैं जो इनका स्वभाव बिगाड़ देते हैं। अन्यथा इन्द्रियोंका काम तो इसको—अपने विषयको व्यक्त करनामात्र है। जीवनके लिये जितना उपयोगी है—उतना रस-पदार्थ-भोगसेवन समझदारी है।'

× × ×

'वरं ब्रूहि!' अब ऐसे व्यक्तिको वरदान देने देवता आ गये हैं। क्यों आ गये हैं, यह बात तो वे ही जानते होंगे। देवताओंको भी सम्भव है कि ऐसा कुछ व्यसन होता हो।

'आप क्या दे सकते हैं?' उसने देवताकी ओर ऐसे ढंगसे देखा कि उस दृष्टिमें जिज्ञासाका भाव तो सर्वथा नहीं था।

'धन-रत्न, बल-यश, पद-प्रभुत्व, सिद्धियाँ!' देवताके स्वरमें गम्भीरताके स्थानपर उल्लास अधिक था। जैसे वरदान उसे न मिलकर स्वयं देवताको मिलनेवाला हो—'स्वर्ग एवं स्वर्गसे सम्बन्धित गन्धर्वादि लोकोंमें जो प्राप्य है, वह भी।'

'अच्छा, तो तुम मुझे मूर्ख बनाने आये हो?' वह खुलकर हँसा। अच्छा हुआ; क्योंकि सम्भावना इसकी भी थी कि वह क्रुद्ध हो जाता और देवताको झिड़क देता। किंतु देवताको 'आप'के स्थानपर वह 'तुम' तो कहने ही लगा था।

'ऐसा तो नहीं है।' देवता भी चौंका। उस बेचारे देवताको भी ऐसा व्यक्ति कभी मिला नहीं होगा। उसने बड़े गम्भीर भावसे कहा—'प्रतिभा, कला, विद्याका वरदान भी चाहो तो माँग सकते हो।'

'अनावश्यक पदार्थ और पैसा जैसे भार है, वैसे ही विद्या-प्रतिभा भी भार ही है।' उसने देवताकी ओर ऐसे देखा, जैसे किसी मित्रको समझा रहा हो—'तुम देख रहे हो कि ऐसी कोई आवश्यकता जीवनके लिये नहीं है, जो मुझे उपलब्ध नहीं है। जीवनके लिये जो पदार्थ, जो धन, जितनी बुद्धि-विद्या आवश्यक है, मेरे पास वह है। मुझे इससे अधिकका लोभ नहीं है।'

'सिद्धियाँ……'देवताने कहना चाहा।

'बको मत!' बेचारे देवताको डाँट दिया गया। 'मैं मनुष्य हूँ। पक्षी आकाशमें उड़ते हैं और मछली जलमें डूबी रहती है। चींटी नन्ही है और हाथी भारी। तुम्हारी ऐसी कौन-सी सिद्धि है, जो किसी पशु-पक्षी अथवा कृमिमें सहज नहीं है? मनुष्यके मनमें तुम प्रकारान्तरसे पशु-पक्षी या कीटके गुणका लोभ उत्पन्न करना चाहते हो?'

'मनुष्यको भी पद-प्रतिष्ठाकी स्पृहा होती है।' देवता पता नहीं क्यों डाँट खाकर भी रुष्ट नहीं हुआ था। वह सम्भवतः असफल होकर जानेको उद्यत नहीं था

उसने कहा—'आपके समीप सामग्री थोड़ी ही है। शरीर सदा स्वस्थ ही रहे, इसका आश्वासन नहीं है। आपको इस ओरसे मैं निश्चिन्त कर दे सकता हूँ।'

आश्चर्यकी बात यह है कि डाँटे जानेके पश्चात् देवताने उसे 'तुम'के स्थानपर 'आप' कहना प्रारम्भ कर दिया था; किंतु इस ओर उसने ध्यान नहीं दिया। वह कह रहा था—'तुम देवता हो; अतः तुम्हें जानना चाहिये कि मेरे लिये मेरे स्वास्थ्य और मेरे संग्रहका क्या अर्थ है। मेरे शरीरकी शक्ति, मेरी बुद्धि, मेरी विद्या कितनी अल्प है—यह तुमसे अज्ञात नहीं होना चाहिये। इतना होनेपर भी मेरी निश्चिन्तता, मेरी सुव्यवस्था तुम देख सकते हो।'

'किंतु यह सब तो इस समय है।' देवताने बड़े संकोचसे कहा। 'भाग्य अबतक आपपर सानुकूल रहा है।'

'किसका भाग्य सानुकूल रहा है?' उसने व्यंग-पूर्वक पूछा। 'परिवार, परिच्छद, पाथेय एवं अध्ययनका उच्छेद सानुकूल प्रारब्ध ही कियाँ करता है?'

देवताको भी नहीं सूझ रहा था कि वह इसका क्या उत्तर दे। वह मौन रह गया। दो क्षण रुककर उसने कहा—'तुम देवता सही, तुम्हारी दिव्य दृष्टिकी भी सीमा है। तुम उस नटखटको नहीं देख सकते, यह तुम्हारा दोष तो नहीं है। तुम जानते हो?'

कोटि-कोटि विश्वोंके वैभवकी अधिदेवी—
　इन्दिरा बढ़कर दूर खड़ी चरणोंसे
　　चाहती है क्षुद्रतम सेवाका सम्मान!
थर-थर काँपते हैं चरण महाकालके—
　जिसके　　भ्रूभङ्गसे,
　　कन्हाई वह मेरा है!
　　　तुम दोगे मुझको वरदान?

'देव!' जैसे कोई बड़ी भूल हो गयी हो—देवता इस प्रकार केवल एक शब्द बोल सका और क्योंकि वह देवता था, उसे वहाँ अदृश्य होनेमें कहाँ क्षण लगना था।

'स्वप्न भी कैसे-कैसे आते हैं!' वह सबेरे कह रहा था। जब उसे ही स्मरण नहीं कि रात्रिमें वह सचमुच उठकर बैठा था या उसने स्वप्न ही देखा था, तब ठीक बात क्या है, कैसे कही जा सकती है।

'ठीक बात इसमें इतनी अवश्य है' वह कहता है—'समस्त भोग जीवनके लिये हैं—मनुष्यको यह तथ्य ठीक समझमें आ जाय तो उसे न इन्द्रियाँ मूर्ख बना सकतीं और न कोई देवता। मनुष्य जब इस सत्यको छोड़कर इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लोभमें पड़ता है, उसे केवल मूर्ख ही नहीं बनना पड़ता, रोगी बनना पड़ता है और कष्टोंकी परम्परामें जकड़ा जाकर विवश हो जाना पड़ता है।'

भजनके लिये प्रेरणा

भजो रे भैया राम गोविंद हरी।
जप तप साधन कछु नहिं लागत खरचत नहिं गठरी॥
संतति संपति सुख के कारन जासों भूल परी।
कहत कबीर जा मुख से राम नहिं ता मुख धूल भरी॥

—संत कबीर

वैराग्य, सत्सङ्ग और भगवत्प्राप्ति

(लेखक—आचार्य श्रीरामप्रतापजी शास्त्री)

यह भारत है, जहाँ जन्म लेनेके लिये देवता भी लालायित रहते हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥

मनुष्य-जीवनका एक-एक श्वास अमूल्य है; क्योंकि ईश्वर-कृपासे उत्तम देश, काल और सत्सङ्ग पाकर यह मानव एक क्षणमें ही परमपदको प्राप्त कर सकता है। आधा क्षण भी कल्याणके लिये पर्याप्त कहा गया है—'क्षणार्धं क्षेमार्थम्।' परंतु हमलोग मोहरूपी मदिराको पीकर ऐसे मोहित हो रहे हैं कि उसका नशा तो कभी उतरनेवाला ही नहीं दीख पड़ता। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको इस मोह-बन्धनकी निवृत्तिके लिये शरीर और संसारकी अनित्यतापर विचार करते हुए भोगेच्छामात्रका परित्याग करनेका आदेश दिया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ५। २२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले भोग हैं, वे सब-के-सब आदि-अन्तवाले हैं—अनित्य हैं। बुद्धिमान् जन इन विषयोंमें कभी नहीं अनुरक्त होते।' बस, इसीलिये समस्त तपोंमें वैराग्य परम तप है—

तपसामपि सर्वेषां वैराग्यं परमं तपः।

जबतक सांसारिक पदार्थोंमें राग है, तभीतक बन्धन है और रागके छूटनेपर ही वैराग्य बनता है। वैराग्य भीतरी त्यागके भावका वाचक है। संसारमें जितने धन-धान्य हैं, जितनी स्त्रियाँ (या पुरुष) हैं, जितनी सामग्रियाँ हैं, वे सब एक साथ ही किसी व्यक्तिको मिल जायँ, तब भी उनसे उसे तृप्ति होनेकी नहीं—

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः
एकस्यापि न पर्याप्तमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥

इसका यही कारण है कि यह जीव ईश्वर—परमात्माका अंश है, इसकी पिपासा इन जड भौतिक पदार्थोंसे शान्त ही नहीं हो सकती। यह तो परमात्माके मिलनेपर ही सम्भव है। चेतनकी भूख जड पदार्थोंसे भला कैसे मिट सकती है। चाहे ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाय, पर भोगोंसे, उनके संग्रहसे जीवकी भूख कभी नहीं मिट सकती। उसे शान्ति कहाँ ? शान्ति तो तभी मिलेगी, जब कामनाओंका अन्त हो जायगा। संसारके पदार्थोंमें तथा स्वर्गके पदार्थोंमें जो सुख है; वे सब मिलकर भी तृष्णा-नाशके सुखके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हैं।

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तजीविनः॥

यदि सुख होता तो राजा-महाराजागण राज्यके सुखोंका त्याग क्यों करते ? राजा भर्तृहरिने कहा है—

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलने क्षमः॥

'अकेला, स्पृहारहित, शान्तचित्त, करपात्री और दिगम्बर होकर हे शम्भो ! मैं कब अपने कर्मोंको निर्मूल करनेमें समर्थ हो सकूँगा ?' ठीक भी है, रहनेयोग्य—ठहरनेयोग्य एक वैराग्यको छोड़कर निर्भय स्थान भी तो दूसरा नहीं है—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

'भोगोंमें रोगादिका भय, कुलमें गिरनेका भय, धनमें राजाका भय, मानमें दीनताका भय, बलमें शत्रुका भय, रूपमें बुढ़ापेका भय, शास्त्रमें विवादका भय, गुणोंमें

दुर्जनका भय और शरीरमें मृत्युका भय तो सदा ही बना रहता है। यहाँ पृथ्वीमें मनुष्यके लिये सभी वस्तुएँ भयावह हैं, एक वैराग्य ही सर्वथा भयरहित है।'

भर्तृहरिजी कहते हैं—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

'हमने भोगोंको नहीं भोगा, भोगोंने ही हमें भोग लिया—समाप्त कर दिया। अरे! इस आशा-पिशाचिनी-के ही कारण तो इस जीवनकी सारी दुर्दशा हो गयी, फिर भी इसका पिण्ड हमसे न छूट सका।'

भगवान् शंकराचार्यके वचन हैं—

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्॥

'अङ्ग गल गये, बाल सफेद हो गये, शरीर हिलने लगा, दाँत गिर गये, वृद्ध होनेपर डंडेका ही आश्रय रह गया। फिर भी आशाने पिण्ड न छोड़ा।' जहाँ गगन-चुम्बिनी अट्टालिकाएँ खड़ी थीं, आज वहाँ खँडहर ही दिखायी पड़ते हैं। जिसके हृदय-में वैराग्य है, उसे शरीरके जानेका भय नहीं। शरीर कल जाता हो तो आज ही चला जाय।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति॥

विषय-पदार्थ चाहे दीर्घकालतक रहें, पर एक दिन अवश्य जानेवाले हैं। चाहे हम उनका त्याग करें या वे हमें त्याग दें, उनका वियोग अवश्य ही होगा; पर संसारी मानव स्वयं उनका त्याग करनेको तैयार नहीं है। जब विषय-पदार्थ स्वतन्त्रतासे हमारा परित्याग करते हैं, तब हमारे मनको बड़ा कष्ट पहुँचता है। परंतु यदि हम उनका स्वयं परित्याग कर दें तो हमें अनन्त सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है—ये ही पदार्थ मनसे छोड़ देनेपर सुख देनेवाले बन जाते हैं।

इसीलिये भर्तृहरिजीने कहा है—

अजानन् दाहार्त्तिं पतति शलभस्तीव्रदहने
न मीनोऽपि ज्ञात्वा बडिशयुतमश्नाति पिशितम्।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्
न मुञ्चामः कामानहह! गहनो मोहमहिमा॥

'पतिंगा इस बातको नहीं जानता कि जलनेपर कैसी पीड़ा होती है, इसीलिये वह प्रचण्ड ज्वालामें कूद पड़ता है। मछलीको भी बंसीमें लगा हुआ मांसका टुकड़ा खाते समय पता नहीं रहता कि उसके भीतर लोहेका काँटा है। परंतु हमलोग तो यह जानते हुए भी कि विषय-भोग विपत्तिके जालमें फँसानेवाले हैं, उन्हें नहीं छोड़ पाते। अहो! कितना बड़ा और घना मोह—अज्ञान है।' अस्तु, वैराग्यरूपी शस्त्रसे ही इसकी जड़ काटी जा सकती है—

असङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।

वैराग्यरूपी शस्त्रसे ही इस मोहकी जड़ समाप्त की जा सकती है। पर वह भी सहसा सम्भव नहीं है।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

सत्सङ्गसे तात्पर्य है—सत्में आसक्ति। यह 'सत्' शब्द गीतामें परमात्माके लिये ही प्रयुक्त हुआ है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।

जिसका कभी अभाव नहीं होता है—

नाभावो विद्यते सतः।

ऐसी अव्यय नित्य सद् वस्तु परमात्मा ही है—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥

वह सत्ता जिससे सम्पूर्ण संसार व्याप्त है 'सत्'—परमात्मा ही है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

'मैंने ही अव्यक्त रूपसे इस समस्त जगत्‌को व्याप्त कर रक्खा है।' जिसका वर्णन श्रुति इस प्रकार करती है—

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।

अर्थात् वह सृष्टि करके स्वयं ही स्थावर-जंगम सभी भूतोंमें व्याप्त हो गया। अब ये परमात्मा उन्हींको मिल सकते हैं, जो उपर्युक्त भावको समझकर सर्वत्र समदृष्टि रखकर समस्त प्राणियोंके प्रति राग-द्वेषका परित्याग करके समदृष्टियुक्त व्यवहार करनेमें निपुण हैं।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—जो पुरुष मेरा ही कर्म करता है, मेरे ही परायण है, मेरा ही भक्त है, आसक्ति-से रहित है और समस्त प्राणियोंमें वैररहित है, वह मुझे ही प्राप्त करता है। भगवान्‌ने यहाँ 'सङ्गवर्जितः' कहा है, विवेकीजन सङ्ग—आसक्तिको आत्माका अच्छेद्य बन्धन मानते हैं; किंतु वही सङ्गरूपा आसक्ति संतोंके प्रति जब हो जाती है तो मोक्षका खुला द्वार बन जाती है। इसका कारण यह है कि सत्पुरुषोंके समाजमें सदा पवित्र-कीर्ति श्रीहरिके गुणोंकी चर्चा होती ही रहती है—जिससे विषय-वार्ता पास ही नहीं आने पाती और जब नित्यप्रति भगवच्चर्चा-वार्ता-कथाका सेवन किया जाता है, तब वह मोक्षाभिलाषी पुरुषकी बुद्धिको भगवान् वासुदेवमें लगा देती है—

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः
प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-
र्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे॥
(श्रीमद्भागवत ५। १२। १३)

'जो लोग दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग भाँति-भाँतिके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवन किये बिना और कोई साधन नहीं है। बस, इसीसे वे अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकते हैं।' सत्-कथा, हरि-कथाको छोड़कर और सभी असत् है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
(श्रीमद्भागवत १२। १२। ४८)

'जिस वाणीद्वारा भगवान्‌के नाम, गुण, लीलाका कथन नहीं होता, वह भावयुक्त होनेपर भी व्यर्थ—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है। जो वचन भगवद्गुणोंसे पूर्ण रहते हैं, वे ही परम मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं।' सत्सङ्ग-सुधाके परम पिपासु भक्तराज ध्रुव सत्सङ्गके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं—

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥
(श्रीमद्भागवत ४। ९। ११)

'परमात्मन्! जिनकी आपमें अविच्छिन्न भक्ति है, उन निर्मल-हृदय सत्पुरुषोंका सङ्ग मुझे दीजिये; उनके सङ्गसे आपके गुणों और लीला-कथा-सुधाको पी-पीकर मैं उन्मत्त हो जाऊँगा, जिससे सहज ही संसार-सागरसे मुक्ति मिल जायगी।'

इस प्रकार भगवान्‌की अविचल भक्ति, स्मृति सारे पाप-ताप और अमङ्गलोंको विनष्ट कर देती है और उसीसे अन्तःकरण परम शुद्ध हो जाता है एवं पर-वैराग्यसे युक्त भगवान् श्रीहरिके स्वरूपका सम्यक् ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है—

सत्सङ्गत्वे निस्सङ्गत्वं निस्सङ्गत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्त्वं निश्चलतत्त्वे जीवन्मुक्तिः॥

चंडौतकी महासती

[११ जनवरी सन् १९६६ की सत्य घटना]

(लेखक—श्रीबलरामजी शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

प्रस्तुत प्रसङ्गमें हमीरपुर जिला, उत्तर प्रदेशकी एक सती स्त्रीकी चर्चा की जा रही है, जो ११ जनवरी १९६६ को चंडौत गाँवमें दिनमें ही हजारों व्यक्तियोंके सम्मुख अपने मृत पतिके शवके साथ जलकर सती हो गयी। उस सतीको अपने पतिके शवके साथ जलकर प्राण न देनेके लिये वहाँकी जनता और चंडौत चौकीकी पुलिसने बहुत बार प्रयत्न किया। उसे बलपूर्वक एक कोठरीमें बंद भी किया गया। कोठरी बंद करके पहरा भी बैठाया गया, किंतु उस सतीके प्रभावसे वे सभी बन्धन बेकार हो गये और हजारों लोगोंके सम्मुख सती अपना अलौकिक दैवी प्रभाव दिखलाकर पतिके शवके साथ विधिवत् सती हो गयी। घटनाका उल्लेख निम्न प्रकारसे है—

उत्तर प्रदेशके बुंदेलखंडमें हमीरपुर एक जिला है। हमीरपुरसे पचास मील दूर राठ तहसील है। राठसे पचीस मील दूर चंडौत नामक गाँव है। हमीरपुरसे चंडौत जानेके लिये बँस या• लारीसे राठ होकर ही जाना पड़ता है। इस प्रकार जिलेके मुख्यावाससे चंडौत पचहत्तर मील दूरस्थ है। चंडौतके लिये वर्षा ऋतुमें जानेका कोई साधन नहीं है। जरियातक एक लारी चलती है। जरियासे चंडौत नौ मील है। बहुत ऊबड़-खाबड़ रास्ता है। ऊँची-नीची कँकरीली-पथरीली कच्ची सड़क है। इसी सड़कपर राठसे चंडौततक बरसातके बाद एक लारी चलती है। यह सब लिखनेका तात्पर्य यह है कि हमीरपुर जिलाका मुख्यावास स्वयं यमुना और बेतवाके बीचमें टापूके रूपमें है। दोनों नदियोंमें पुल न होनेसे हमीरपुरकी यात्रा बहुत कठिन मानी जाती है। हमीरपुरसे चंडौत पचहत्तर मील दूरस्थ है। चंडौतमें समाचारपत्र नहीं पहुँच पाते और न तो ऐसे संवाददाता हैं, जो ऐसी घटनाओंको समाचारपत्रोंमें दे सकें। फलतः ऐसी घटनाका समाचार पाठकोंतक पहुँच न सका होगा। इस युगमें हजारोंके बीचमें अपने अलौकिक प्रभावसे जनताको प्रभावित करके साठ वर्षकी वृद्धा अपने पतिके शवके साथ सती हो गयी और सब लोग उस सतीके प्रभावसे प्रभावित होकर उसे सती होनेसे विरत नहीं कर सके। पुलिस भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी। यह सब इसी युगमें ११ जनवरी १९६६ को हुआ। ऐसे समाचारको भारतीय पत्र भी प्रकाशित न कर सके। यह होता भी कैसे? उस समाचारको न तो भेजा गया, न प्रकाशित ही हो सका।

सतीका जीवनवृत्त

श्रीमती रौशीली उपनाम मयनियाँ जातिकी केवट थीं। रौशीली देवीका विवाह श्रीघंजू केवटसे हुआ था। घंजू चंडौतके निवासी थे। एक झोपड़ी बनाकर रहते थे। घंजू केवट थे, अतः उनके परिवारके लोग अपना छोटा-मोटा कार्य करते हैं, मजदूरी-खेती आदि भी करते हैं। श्रीमती रौशीली केवट जातिकी स्त्री होते हुए भी अभक्ष्य पदार्थ (मछली, मांस) नहीं ग्रहण करती थीं। अपने पतिको ही ईश्वर मानकर उनकी सेवा करती थीं। कथा-पुराण सुननेका उनका बहुत ध्यान रहता था। वे चारों धामों (तीर्थों) में जाकर दर्शन कर आयी थीं। उनके व्यवहारसे घर और पास-पड़ोसके सभी लोग प्रभावित थे। यदा-कदा उनके पति उन्हें ताड़ना देते, फटकारते; किंतु वे उसका उत्तरतक नहीं देती थीं। साठ वर्षकी अवस्थामें उनका प्रभाव उनके पुत्रों, पौत्रों, पौत्रियों और पुत्रवधुओंपर इतना था कि कोई भी उनके आदेशके पालनमें आनाकानी नहीं कर सकता था। समय-समयसे वे पुराणों और धार्मिक कथाओंके उपदेशको भी परिवारवालोंको सुनाया करती थीं। सबको सन्मार्गपर चलनेका लाभ समझाती थीं।

१० जनवरी १९६६ की घटना

१० जनवरी १९६६ की रात, जिस दिन भारतके लाल श्रीलालबहादुर शास्त्रीको विधाताने हमसे छीन लिया था, उसी दिन सायंकाल सात बजे चंडौतके श्रीघंजू केवट तीन-चार दिनकी साधारण बीमारीके बाद इस लोकसे बिदा हो गये। उस समय उनकी अवस्था पैंसठ वर्षकी थी, श्रीमती रौशीलीदेवी अपने बीमार पतिकी सेवामें दिन-रात लगी रहीं और उन दिनों वे अपने भोजन, नित्य-नियम आदिके कार्योंको भूल गयी थीं। पतिकी मृत्यु हो जानेसे वे शान्तचित्तसे कुछ विचार करने लगीं। घरके लोग रोने लगे। श्रीमती रौशीलीदेवी मौन थीं। थोड़ी देर बाद अपना मौन भङ्ग करके उन्होंने अपने पुत्रों, पौत्रों आदिको रोने-चिल्लानेसे रोक दिया। सब लोग उनकी गतिविधि तथा उपदेश सुनकर आश्चर्यचकित थे। श्रीमती रौशीलीदेवीने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—'बच्चो! मैं अपने पतिके साथ सती होऊँगी। यह मेरा दृढ़ निश्चय है। तुमलोग रोना-पीटना बंद करो।' श्रीमती रौशीलीदेवी रातभर अपने पतिके शवको अपनी गोदीमें लेकर बैठी रहीं और राम-राम कहती रहीं। उनके लड़कोंको अपनी माँके कथन-पर पूरा विश्वास था—भरोसा था, अतः उन्होंने डरकर अपने पड़ोसियोंसे अपनी माँका निश्चय कह सुनाया। पड़ोसियोंके घरमें रातभर यही चर्चा रही। सबने लड़कोंको समझाया कि 'सती होना अपराध है। तुम-लोग अपराधमें गिरफ्तार हो जाओगे। अपनी माँको सती न होने दो।' गाँवके लोग श्रीमती रौशीलीदेवीके दृढ़ निश्चयको केवल विडम्बना समझ रहे थे। जो धार्मिकजन सतीकी भावनाओं और विचारोंको जानते थे, वे उनके लड़कोंको समझाने लगे—सती होना अपराध माना गया है और इस अपराधमें तुम सब फँस जाओगे। अपनी माँको सती न होने दो। दूसरे दिन अर्थात् मङ्गलके दिन ११ जनवरीको प्रातः आठ बजते-बजते सम्पूर्ण गाँवके लोग श्रीमती रौशीलीदेवीकी प्रतिज्ञाको सुनकर एकत्रित होने लगे। देखते-देखते उनके मकानके सामने एक भारी भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोग रौशीलीदेवीको समझाने लगे, किंतु उन्होंने सबको अपना दृढ़ निश्चय बतला दिया।

सती होनेका दृढ़ निश्चय

श्रीमती रौशीलीदेवी सधवा स्त्रीकी भाँति अपने शरीरको सुसज्जित करके सती होनेके लिये तैयार हो गयीं। नयी साड़ी पहनीं। आँखोंमें काजल, माथेपर सिंदूर लगाया और राम-राम कहती हुई उन्होंने अपने पुत्रोंसे चिता लगानेके लिये कहा। गाँववालोंने पुनः सतीको समझाया; किंतु उनके ऊपर किसीके समझानेका कोई प्रभाव नहीं था। अन्तमें किसीने प्रस्ताव किया—'माताजी! यदि आप सती होना चाहती हैं तो अपना कुछ प्रभाव हमलोगोंको दिखलायें। सती स्त्री अपने प्रभावसे असम्भवको सम्भव कर देती हैं।' सतीका प्रभाव देखनेके लिये सबने उत्कण्ठा व्यक्त की।' गाँव-वालोंका प्रस्ताव सुनकर सतीने आज्ञा दी, 'तुमलोग पानके दो बीड़े लाओ।' सतीकी आज्ञा होते ही पानका बीड़ा लाया गया।

सतीका प्रभाव

गाँव चंडौतके बहुत-से नर-नारी वहाँ उपस्थित थे। पानके बीड़े सतीके हाथमें दिये गये। सतीने एक बीड़ा अपने पुत्र सरमनको दिया और कहा कि अपने पिताके मुखमें पानका बीड़ा डाल दो और दूसरा पानका बीड़ा सती स्वयं पाने लगी। गाँववालोंने देखा कि मृतक घंजूके शवने जँभाई ली और पानका बीड़ा मुखमें पड़ते ही उसके होठ हिलने लगे। शवका मुख लाल हो गया। होठोंका हिलना बंद हो गया। गाँववालोंने अपनी आँखोंसे इस दृश्यको देखा। गाँवके लोगोंके मनमें कुछ भय उत्पन्न हुआ। कुछ लोग सतीके पक्षमें हो गये। कुछ लोग चंडौत गाँवकी पुलिसचौकीपर पहुँचकर पुलिस बुला लाये। पुलिसके आनेपर और सतीका होना अपराध मानकर कुछ लोग

बलपूर्वक सतीको एक कमरेमें बंद करनेपर उतारू हो गये। मृतक शरीरको लोगोंने बाहर किया और श्रीमती रौशीलीदेवीको एक कोठरीमें बलपूर्वक बंद कर दिया गया। यह सब पुलिसकी सम्मतिसे हुआ। उस कोठरीमें ताला लगाया गया। गाँवके श्रीविश्वनाथ चौकीदारको पहरेपर लगाया गया! चौकीदार पहरा देने लगा। सतीने उस समय अपने बच्चोंको बतलाया कि मृतक शरीरको जलानेके लिये मेरे कहनेके अनुसार चिता सजाओ। सतीने अपनी सम्मतिसे चिताकी भूमिका निर्णय किया और सतीके कथनानुसार उसी स्थानपर चिता लगायी गयी। कुछ लोग शवको लेकर चितापर रख आये। चितापर शव रखकर आग लगायी गयी; किंतु चिताकी लकड़ियोंमें आगका प्रभाव नहीं होता था और चिता धू-धू करके रह जाती थी। सरमन घर वापस आया और चितामें घी डालने और हवनकी सामग्री छोड़कर चिताको प्रज्वलित करनेकी बात कही। सबने उसकी इच्छाका समर्थन किया। श्रीमती रौशीली-देवी जिस कोठरीमें बंद की गयी थीं, वह कोठरी सर्वसाधारणके लिये दृश्य थी। कोठरीमें ताला बंद था। चौकीदार पहरेपर था। लोगोंने देखा कि कोठरीके किवाड़ एक बार हिल उठे। चौकीदार कोठरीके किवाड़को पकड़कर सावधान होकर खड़ा था। सहसा दूसरी बार भी किवाड़ हिले और ताला अपने-आप खुलकर गिर गया। साँकल अपने-आप खुली। साथ ही दोनों किवाड़ भी अपने-आप खुल गये। कोठरीका ताला अपने-आप खुला, साँकल अपने-आप खुली और दोनों किवाड़ अपने-आप खुले—इसे गाँवके सभी लोग मानते हैं। इसे बहुतोंने देखा। सतीके इस प्रभावसे सब लोग स्तब्ध थे। पुलिसवाले भी किंकर्तव्यविमूढ़ थे। दरवाजा खुलते ही रौशीलीदेवी उस कोठरीसे बाहर हो गयीं और इतने वेगसे दौड़ीं कि देखनेवाले हताश हो गये। देखते-देखते वे प्रज्वलित चितापर बैठ गयीं। उनके बैठते ही चिता भी सहसा जल उठी। सतीने पतिके शवको अपनी गोदमें लिया और क्षणभरमें आग सम्पूर्ण चितामें दौड़ गयी। सतीकी साड़ी पहले जलने लगी तो कुछ लोग पासमें रखे ज्वारके कुछ डंठल डालने लगे। सतीने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और कहा—'यह गौका भोजन है, इसे न जलाओ।' सती इतना कहकर ध्यानमग्न हो गयीं और पतिके साथ स्वर्ग चली गयीं। सतीके इस कृत्यको देखकर गाँवके लोग अपनी भावनाको छिपा न सके और कितने लोगोंने अपने शरीरके वस्त्र चितापर फेंक दिये, कितनोंने रुपये-पैसे फेंके, कितने घरसे घी आदि लाकर चितापर चढ़ा गये और देखते-देखते पति-पत्नीके शव भस्म हो गये। लोगोंने सतीकी भस्मको अपने माथेपर लगाया और सतीका जय-जयकार करने लगे। थोड़ी देरमें कई हजार जनसमुदाय इकट्ठा हो गया। गाँववालोंने मुझे यह भी बतलाया कि सती जब चिताकी ओर दौड़ीं तो उन्हें पुलिस और कुछ लोगोंने बलपूर्वक रोकनेका प्रयत्न किया; किंतु सतीने उनसे कहा, 'मुझे सती होनेमें जो बाधा डालेगा, उसे इसका भयानक परिणाम भुगतना पड़ेगा।' धार्मिक भावनासे प्रेरित जन-समुदाय सतीको रोक न सका और सती अपने प्रभावसे सबको चकित करके अपने पतिके साथ स्वर्ग सिधार गयीं।

गाँवके सब लोग यह मानते थे कि सती होना अपराध है। पुलिसके एक-दो सिपाही भी सतीको रोकना चाहते थे; किंतु सतीमें न जाने कहाँसे दौड़ने-की शक्ति आ गयी थी कि साठ वर्षकी अवस्थामें वे बिजलीकी भाँति दौड़कर चितापर चढ़ गयीं और अल्प समयमें जलकर सती हो गयीं। उन्हें किसीने रोकनेका साहस नहीं किया। विधान (कानून) पृथक् है और सतीका दृढ़ निश्चय पृथक् था। सतीका दृढ़ निश्चय सफल हुआ। लोग देखते ही रह गये। पुलिसके सिपाही कर ही क्या सकते थे। जो होना था, वह होकर ही रहा।

सती-परिवारमें सतीके तीन लड़के—छामन, सरमन और सुखुवा हैं और बाबूराम, शिवराम, आशाराम, कैलासपति पौत्र हैं। अनेकों पौत्रियाँ हैं। सब सानन्द रहकर सती माताका गुणगान करते हैं। जनवरी १९६६ को एक बजे दिनमें सती रौशीलीदेवीने अपना शरीर त्याग दिया और प्राचीन भारतीय सती-परम्पराकी लोकमें एक कड़ी जोड़कर भारतीय सती नारियोंकी यशोगाथाको अमर कर गयीं। सती अपने नश्वर शरीरको त्यागकर इस युगमें अपना नाम तो अमर कर ही गयीं, साथ ही नये युगके सामने यह प्रत्यक्ष प्रमाणित कर गयीं कि हमारा हिंदू-धर्म कितना महान् है, कितना विशाल है ? सती-सावित्री, द्रौपदी-सीताकी कहानी भी सत्य है—शाश्वत है।

चंडौत गाँवमें सतीका चबूतरा बनवाकर गाँववाले प्रत्येक मंगलवारके दिन सतीके नामपर मेला लगाते हैं। पास-पड़ोसकी जनता सतीके चबूतरेपर एकत्रित होकर सतीकी पूजा-अर्चना करती है। सती-परम्परामें सन् १९६६ की यह घटना नयी परम्परा, नयी दिशामें मुड़कर पथभ्रष्ट होनेवाली नारियोंके लिये ही नहीं, अपितु पथभ्रष्ट पुरुषोंके लिये भी चंडौतकी सतीकी यह (गाथा) शिक्षा ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करती है। बुंदेलखंडमें जानेपर इस लेखके लेखकको भी सतीकी गाथा सुनने और चंडौत गाँवके सतीके चबूतरेका दर्शन करनेका अवसर मिला। फलस्वरूप यह निबन्ध सेवामें प्रस्तुत किया जा सका।

सहेली

[कहानी]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

सरलाने जब देखा कि उसके पूज्य माता-पिता उसके विवाहके व्ययकी व्यवस्था न कर सकनेके कारण चिन्तासे घुले जाते हैं, तब वह संसारकी असारताको समझ हरिभजनमें अपना तन सुखाने लगी। वह नित्य सुन्दर सिंहासनपर विराजमान भगवान् श्रीराधाकृष्णजीके मनोहर चित्रके सम्मुख, कमरेके कपाट बंदकर, भक्तिरसमें मग्न हो, भक्तिमती मीराबाईके भजन गाकर कीर्तन किया करती थी। प्रत्येक परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेके कारण कालेजके पिता-तुल्य अध्यापक उससे सदा प्रसन्न रहकर उसकी सादगी, सरलता एवं विनय-शीलताकी अन्यान्य आधुनिक रंगमें रँगी छात्राओंसे तुलना किया करते थे।

एक रविवारके दिन सरलाकी सहेली रमाने आकर मन्दहास्यके साथ धीरेसे उससे कहा—"तुम्हारा मेरा परिचित धनवान्का सुन्दर पुत्र रामेश्वर तुमसे 'लव मैरेज' करनेको प्रस्तुत है और चाहता है कि तुम यह सादापन छोड़कर जरा ढंगसे रहा करो।"

इतना सुनते ही सरलाके चेहरेपर दुःख और क्रोधकी रेखाएँ उभर आयीं। वह दुःखभरे स्वरमें बोली—"रमा बहिन! तुम्हें ऐसी बात मुझसे कभी नहीं कहनी चाहिये। हम पवित्र आर्य कुमारी हैं, हमारे माता-पिता विधिसहित जिनके साथ विवाह करेंगे, वे ही हमारे पूज्य और प्रियतम पति होंगे। तुमने भी तो भारतीय नारीके महान् आदर्शोंको रामचरितमानसमें पढ़ा है। भाई रामेश्वरसे कहो कि किसी बहनके हाड़-मांस

पर रीझना * घोर अन्याय और महापाप है। हमारी संस्कृतिमें विवाहित पति चाहे कैसा ही हो, उसका अपमान करनेसे नरक-यातनाकी प्राप्ति होना बताया गया है—

वृद्ध रोगवस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
(रामचरितमानस)

हमें इसी महान् आदर्शपर चलकर सदैव अपनी भारतीय संस्कृतिकी रक्षा करनी है। आजका भारी दोष 'लव मेरिज' करना ऐसी भयंकर भूल है, जिसने अनेक घरोंको बसाया नहीं, बल्कि तलाकके रूपमें उजाड़ कर हिंदू-समाजपर कलङ्क लगाया है।'

सरलाकी बातें सुनकर रमा सकुचा गयी और प्रसङ्ग बदलते हुए बोली—तुम अपने शरीरके साथ, जो भगवान्का मन्दिर है, इतना अन्याय क्यों कर रही हो ! जानती हो—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

सरलाने हँसकर कहा—'प्रिय सखी ! त्यागमय सादे जीवनमें ही तो यथार्थ सुख है। मैं आजकलकी नयी परिधान-शैलीकी फेशनेबल पोशाक नहीं पहनती। मेरी समझसे आर्यनारीके लिये इसीमें गौरव है। मेरे विचारसे तो स्कूल-कालेजोंमें जो छात्र-छात्राओंकी प्रेम-लीला-सम्बन्धी दुर्घटनाएँ हुआ करती हैं, उसका प्रधान कारण निर्लज्जतापूर्ण चटक-मटकका पहनावा ही है, जिसने नारियोंके मुख्य गुण लज्जा, शील-संकोच, नम्रता, विनयशीलता एवं भारतीय संस्कृतिको तिलाञ्जलि देकर उच्छृङ्खलताको सहारा दिया है। यह हमारे लिये अत्यन्त लज्जाकी बात है। मैं तो सदा शुद्ध, श्वेत, खादीकी धुली हुई ढीली पोशाक पहनती हूँ और इसी पोशाकमें निस्संकोच भावसे लंबा मार्ग पार करती हुई जब महाविद्यालयमें जाती हूँ, तब वहाँ छात्रोंसे हाथ जोड़कर 'भाई साहब, जय श्रीराम' कहकर प्रणाम करती हूँ। बदलेमें वे भी हाथ जोड़कर 'बहनजी, जय श्रीराम' कहकर एक शुद्ध भावना बनाकर मुझे प्रणाम करते हैं। इस मानवोचित व्यवहारसे सात्त्विक भाव, सद्भावना, सद्विवेक एवं सद्विचारोंका उद्गम दोनों ओरसे होता है, जिससे हमारा आगेका जीवन श्रेष्ठ, शुद्ध, धर्मशील, कर्मशील एवं कर्त्तव्य-परायण बनना है और हम निर्विकार भावसे व्यक्ति, समष्टि, समाज, घर, गाँव, नगर और सारे देशकी निःस्वार्थ सेवा करनेमें समर्थ होती हैं।"

सरलाकी बातें सुनकर रमा विचारोंमें खो गयी। किंतु बचपनसे कृत्रिम बनाव-श्रृङ्गार करनेमें अभ्यस्त होनेके कारण इसे छोड़नेमें उसे दुःख दिखायी देने लगा। फिर भी वह सरलाको प्रसन्न करनेके हेतु बोली—'प्रिय सहेली ! आज तुमने खरी बातें सुनाकर मेरी आँखें खोल दी हैं। आजसे मैं भी ऐसा ही करूँगी और अन्य सहेलियोंको भी इसके लिये प्रोत्साहन देती रहूँगी।'

(२)

दिन बीत गये। दोनों सहेलियोंका विवाह हो जानेसे वे बिछुड़ गयीं। सरलाके श्वशुर-गृहसे थोड़ी दूर पाप-तापनाशिनी भगवती भागीरथी बहकर उस क्षेत्रको पवित्र कर रही थी। सरला नित्य प्रातःकाल पड़ोसकी महिलाओंके साथ उसमें स्नान करनेको जाती और स्नानान्तर हाथ जोड़कर प्रार्थना करती—'गङ्गा माँ ! हम अनेक दोषोंसे भरे हैं; पर भरोसा यही है कि तेरे पड़ोसमें बसते हैं।* इसी लाभसे हमारे सभी कल्मष धुल जायँगे।' सरला चक्कीसे घरका आटा पीसती और कुएँसे जल खींचकर भर लाती थी। इन

* "हो विके जहाँ तुम विना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़-चाम !"
(महाकवि निराला—"तुलसीदास काव्य")

* भागीरथी हम दोस भरे, पै भरोस यही कि परोस तिहारे।
(स्व० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, "गंगा को शुभ संदेश")

कामोंमें व्यायाम हो जानेसे उसका शरीर सदा स्वस्थ, बलिष्ठ और मन प्रफुल्ल बना रहता था।

सरलाकी ससुरालके लोग रोजी कमाते तो थे, पर उनके घरमें बरकत नहीं रहती थी। कारण यह था कि वे लोग प्रातः देरसे उठकर भोजन बनाने-खानेमें लग जाते थे। भगवान्‌के भोग लगाना तो दूर रहा, घरकी सफाई भी बादमें होती थी। इस दोषको सरलाने अनुनय-विनय करके दूर करवाया, जिससे घरमें पवित्रता आ गयी।

एक दिन गणेश नामके एक अभ्यागतने आकर अपनी व्यथा सुनाते हुए सरलासे खानेको रोटी माँगी। सासने मना किया। सरला हाथ जोड़कर विनय करने लगी—'माताजी! इसे दो रोटी दे देनेमें क्या हानि है। यह बेचारा दूर बैठकर खा लेगा—ठंडा जल पी लेगा। पेट भर जानेसे हमें असीसें देगा। हम पुण्यके भागी होंगे।' सरलाकी बात समझकर सासने आज्ञा दे दी, भोजनसे तृप्त होकर गणेश अनेक असीसें देता हुआ सरलाके चरण-स्पर्श करनेको आगे बढ़ा। सरलाने तुरंत टोंकते हुए कहा—'मेरे चर्म-चरणोंको छूनेसे कोई लाभ नहीं। आप दीनोंके दुःख-दोष-दारिद्र्यको दलनेवाले द्वारकाधीश भगवान्‌का भजन करते रहिये। अन्नदाता वे ही हैं।' इस प्रकार सरलाके द्वारा घरकी स्थितिके अनुसार सदा दान-पुण्य होता रहता था, जिसके फलस्वरूप उसके घरमें सुख-शान्ति, बरकत और आनन्द बने रहने लगे।

इधर, रमाकी ससुरालमें वस्त्र-व्यवसायसे खूब लाभ होता था। पति सुरेशकुमार ईमानदारी, दयाधर्म, दान-पुण्यको महत्त्व न देकर लोभवश कईगुना अधिक नफा जोड़कर ग्राहकोंको ठगनेमें तनिक भी संकोच नहीं करता था। इससे शनैः-शनैः उसकी साख घटनेके साथ ही बिक्री भी बहुत कम होने लगी। सुरेशकुमार जुएके व्यसनसे धन बढ़ानेके प्रयत्नमें निजकी पूँजी भी खोने लगा। रमा घरका कोई काम न कर दिनभर नये-नये बनाव-श्रृङ्गारमें लगी रहती थी। उसके लिये बहुमूल्य वस्त्रादि आते रहे। वह समझती रही—'मैं करोड़पतिकी पत्नी, सेठानी हूँ।' गृहकार्यमें शारीरिक परिश्रम न करनेसे उसका स्वास्थ्य क्रमशः गिरने लगा। सुन्दर स्वास्थ्य, ऐशोआराम, पूँजी, उपार्जन—सभी धीरे-धीरे घटते हुए नष्ट-से हो गये। अब तो रमा उनकी यादमें घुलने लगी। दूकानका दीवाला निकल जानेके कारण ऋणदाताओंको रुपयेमें एक आनेके हिसाबसे चुकता करके चिन्ताग्रस्त हो सुरेशकुमार घर बैठ गया। मकान बेचकर कुछ दिन तो गुजारा चलाया, परंतु फिर एक समय भी भोजन न मिलनेकी नौबत आ गयी। कहाँ माँगने जायँ, इसी चिन्तामें पति-पत्नीके दिनभरके घड़ी-घंटे बड़ी कठिनाईसे बीतने लगे—

> अय्याम मुसीबतके तो काटे नहीं कटते।
> दिन ऐश के घड़ियोंमें गुजर जाते हैं॥

विपत्तिमें भगवान्‌की याद आती है। रमाको एक चायपार्टीमें विदुषी सहेली चम्पाने पहले कभी 'ॐ रां रामाय नमः' मन्त्रकी बड़ी भारी महिमा बतायी थी। उसे यादकर, अपना संकट मिटानेके हेतु दोनों पति-पत्नी श्रद्धा-भक्तिके साथ इस मन्त्रका जप करने लगे, जिससे उनके मनको बहुत शान्ति मिली। स्वार्थपरताके कारण रमेशकुमारके तो कोई अभिन्न मित्र बन नहीं पाया था। किंतु रमाको सरलाकी याद आयी। तथापि लज्जा और अपमानके निरर्थक विचारोंके कारण उसे सरलाके पास जानेका साहस नहीं होता था—यह बात मन्त्र-जपसे निकल गयी। विचार शुद्ध बन गये। वह निरभिमान होकर सरलाके पास गयी। सरला तो इसे देखते ही मानो रङ्कको निधि मिल गयी हो, इस भाँति प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र उठकर उससे लिपटकर मिली। एक सुन्दर ऊँचे आसनपर उसे बिठाया और प्रेमाश्रु बहाते हुए कुशल-प्रश्न करने लगी। किंतु रमाकी

दुर्दशाके बारेमें थोड़ी चर्चा भी इस विचारसे नहीं की कि 'इसके मनको दुःख होगा।' उसने रमाके शिशुको वात्सल्यभावपूर्वक रमाकी गोदसे अपनी गोदमें उठा लिया और मातृवत् प्रेम उमड़ आनेसे उसे बार-बार चूमने लगी एवं आँचलमें इस प्रकार छिपा लिया, मानो अपने ही उदरके शिशुको स्तनोंका दूध पिला रही हो। बातचीतमें उसने रमाके मनकी बात जान ली। सहानुभूति दिखाते हुए मधुर वाणीमें बोली—'प्रिय बहन! चिन्ता मत करो। भगवान्की कृपापर विश्वास रक्खो। उनका स्मरण करो। उनकी कृपासे सब मङ्गल होगा।'

सरलाने कुछ रुपये बचा रक्खे थे। वह चुपके-से रमाके हाथोंमें रखते हुए बोली—'बहन! इस फूलपत्तीको स्वीकारकर मुझे उपकृत करो। मैं जीजाजी रमेश-कुमारजीका अच्छा काम लगवा देनेका प्रयत्न अपने पतिदेवके द्वारा कराऊँगी। भगवत्कृपासे शीघ्र ही सफलता मिलेगी।' सरलाके आशातीत प्रेम और अपनत्वभरे व्यवहारसे रमा आश्चर्यचकित हो गयी। सोचने लगी—'दुनियादारीमें स्वार्थ-साधनके लिये तो मनुहारके साथ जगत्के लोग चुपके-चुपके चूरमा लाकर खिलाते हैं, पर बिना स्वार्थके छाछकी राबड़ी भी नहीं पिलाते।* सरला तो निःस्वार्थ प्रेमकी मूर्ति, चतुर और समझदार नारी है, वह भला अवसरसे लाभ उठाना कैसे भूल सकती है। अवसरका लाभ भी बहुत दिनोंतक बना रहता है।'†

इन विचारोंके साथ कृतज्ञ हृदयसे विदा लेते समय रमाने सरलाका प्रेमपूर्वक गाढ़ आलिङ्गन किया।

* मतलब री मनुवार, जगत जिमावै चूरमो।
बिन मतलब री बार, राब न पावै 'राजिया'॥
(राजस्थान—मारवाड़में प्रचलित सोरठे)

† समजणहार सुजाण, नर औसर चूकै नहीं।
औसर रो ओसाण, रहै घणा दिन 'राजिया'॥
(राजस्थान—मारवाड़में प्रचलित राजियाके सोरठे)

उस समय दोनोंकी आँखोंसे स्नेहबिन्दुओंकी अविरल धारा बह चली थी। घर पहुँचकर उसने सब समाचार पतिदेवको सुनाये। दोनों मिलकर भगवान्का विश्वास-पूर्वक भजन करने लगे।

× × × ×

सुने री मैंने निर्बलके बल राम।

रमेशकुमार अपनी नवनिर्मित कुटियामें बैठा यह भजन गुनगुना रहा था। इतनेमें ही एक व्यक्तिने आकर कहा—'आपके प्रार्थना-पत्रपर आपको ऊँचा पद मिल गया है।' यह हर्षसूचक समाचार सुनकर रमेश-कुमारने मन-ही-मन अपने इष्टदेव श्रीनीलाचलनाथको अनेकशः धन्यवाद देकर नमस्कार किया और उस आगन्तुकको मिष्टान्नका भोजन कराया। इसके पश्चात् दीनप्रतिपालक, भक्तवत्सल, भयापहारी, सब सुखदायक भगवान्की पूजा-आरती करके साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम करते हुए हाथ जोड़ प्रार्थना की—'नारायण! आप अहैतुकी कृपा करते हैं। अब ऐसी दया करो कि हम आपका चौबीसों घंटे भजन करते रहनेमें कभी थोड़ा भी प्रमाद न करें।' और प्रतिज्ञा की कि 'प्रथम वेतनका रुपया भगवान्के अटका चढ़ानेको भेजूँगा।'

× × × ×

पहनो पहनो सुहागिन ज्ञान-गजरा।
पहनो पहनो........................॥

बाजारके बीच ऊँचे मञ्चपरसे भजनोपदेशक रामप्रसाद-जीने यह गायन मीठे स्वरोंमें गाया। हजारों श्रोताओंमें रमा-सरला भी थीं। सरला बोली—'सखी! वास्तवमें कर्तव्य और परोपकारका ज्ञान समयपर हो जाना हम गृहिणियोंका दिव्य गुण है। मैं तुमको बताऊँ—मैं अपने भतीजेके विवाहमें उत्तूपुरा ग्रामको जा रही थी। मार्गमें एकाएक भारी वर्षा हो जानेसे इतना कीचड़ हो गया कि उसमें गाड़ी-बैल फँस जानेसे हम बड़े संकटमें पड़ गये। इतनेमें ही एक पथिकने हमारी कठिनाई देख-कर पासके गाँवसे पाँच-सात व्यक्तियोंको ला गाड़ी-बैल

कीचड़से निकलवाये और हमें पहुँचानेको उत्तूपुरातक पैदल-पैदल कीचड़में चलकर गया। मुझे उसके इस परोपकारी कामपर बड़ा आश्चर्य हुआ, पूछ बैठी—'भैया, तुम कौन हो? हमारे लिये तुमने बड़ा कष्ट उठाया। यदि तुम ठीक समयपर आकर हमारी सहायता न करते तो इस निर्जन वनमें रात हो जानेपर हमारी क्या दुर्दशा होती।' वह बोला—'माताजी! मैं वही गणेश हूँ, जिसे आपने उस दिन भोजन देकर भूखों मरनेसे बचाया था। वही आपका अन्न-जल यहाँ उमड़ा है। मैं आपका सदा दास रहूँगा।' बात सच्ची थी। मैं तो सुनकर दंग रह गयी बहन!

अब तो रमाका जीवन ही बदल गया। दोनों पति-पत्नी नित्य नियमसे पवनकुमार श्रीहनुमान्‌जी महाराजको ऊँचा सुन्दर आसन देकर विधिपूर्वक श्रीरामचरितमानसका पाठ किया करते थे। उसीमें उन्होंने पढ़ा—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरिभजन जगत सब सपना॥

अतः वे हर समय एवं चर्खेसे सूत कातते समय भी निरन्तर रामनामका जप किया करते थे। चर्खेके सूतसे मोटा खद्दर बुनवाकर पहनते। प्रतिदिन संध्या-समय बाहर निकल जाते और बहुत दूर-दूरतक जाकर निर्धनों, अनाथों, दीन-दुखियोंकी खोज करके उनकी अन्नवस्त्रादिसे यथाशक्ति सहायता करते थे। उनके बच्चोंके लिये अपने हाथकते सूतके वस्त्र सीकर वितरण करते, और असहाय स्त्री-पुरुषोंको गुप्तदान दिया करते थे। इसी प्रकार उनका सादा जीवन व्यतीत हुआ।

मानव-कर्तव्य

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

आत्मा चेतन—नित्य क्रियाशील है, जडकी तरह निष्क्रिय नहीं; इसलिये प्रत्येक प्राणी हर समय कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। पर उनकी अधिकांश क्रियाएँ प्राकृतिक और गतानुगतिक संस्कारवश होती हैं। पर मनुष्यमें विचार या विवेककी अधिकता होनेसे वह प्रत्येक क्रिया क्यों करता है, कैसी क्रिया करनी चाहिये, उससे लाभ है या हानि—इत्यादि विषयोंपर विचार करता रहता है। इसलिये पशु-पक्षी आदि प्राणियोंकी क्रियाओं और मनुष्यकी क्रियाओंमें एक महत्त्वपूर्ण अन्तर दिखायी देता है।

उदाहरणार्थ—अपनी संतानका पालन-पोषण पशु-पक्षी भी करते हैं, और मनुष्य भी करते हैं। पर उन दोनोंके पालन-पोषणमें पर्याप्त अन्तर दिखायी देगा। मनुष्य बहुतसे कामोंको अपना आवश्यक कर्तव्य मान लेता है। पशु-पक्षी ऐसा नहीं मानते। वे या तो अपने संस्कार या स्वभाववश या दूसरोंके अनुकरणमें क्रियाएँ करते हैं, कर्तव्य मानकर नहीं। कर्तव्यमें एक जिम्मेदारी आती है। साधारण क्रियासे कर्तव्यमें एक विशेषता होती है। करने योग्य काम अनेक होते हैं। पर वे सभी एक कोटिके नहीं होते। इसलिये कर्तव्यमें भी भेद किया जाता है। मनीषियोंने सबसे बड़ा कर्तव्य तो धर्मका संग्रह बतलाया है—

कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।

साधारणतया जिनसे हम जीवनमें अनेक प्रकारके लाभ उठाते हैं, उनका हमारे ऊपर उपकार होता है। इसलिये उनकी सेवा करना, उनकी हर प्रकारसे सहायता करना, उनका हित-सुख-साधन करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। एक तरहसे वह ऋण चुकाने-जैसा

कर्तव्य है। बहुत-से व्यक्तियोंसे यद्यपि हम उपकृत नहीं होते, फिर भी उनकी सेवा करना हमारा कर्तव्य होता है। इसीलिये परोपकार, दान आदि प्रवृत्तियाँ मानव-कर्तव्यके अन्तर्गत मानी जाती हैं। समाजसे हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें बहुत कुछ लाभ उठाते हैं; अतः समाज-सेवामें हमें तन, मन, धन लगाना ही चाहिये।

मानवजीवन एक दूसरेपर आश्रित-सा है। जन्मसे लेकर मरणतक अनेक व्यक्तियोंद्वारा हमारा पालन-पोषण, संरक्षण, संवर्धन अर्थात् अनेक प्रकारका विकास होता रहता है। इसलिये बालकसे लेकर वृद्धतक सभी व्यक्तियोंके साथ हमारा कर्तव्यका बन्धन जुड़ जाता है। यदि हम उस कर्तव्यका पालन न करें तो हमारे इस जीवनका कोई विशेष मूल्य नहीं रहता। दूसरे व्यक्तियों-का हमारे प्रति कर्तव्य है तो हमारा उनके प्रति। किन्हींके प्रति साधारण कर्तव्य होता है तो किन्हींके प्रति विशेष——इतना ही अन्तर समझिये। जिन कार्योंसे अपना और दूसरोंका कल्याण हो, वे कार्य सबसे पहले करने योग्य हैं। कम-से-कम दूसरोंका हमारे द्वारा कुछ भी अकल्याण न हो जाय, इसका तो हमें सदा ध्यान रखना ही चाहिये। धर्म-गुरुओंद्वारा हमें पाप और पुण्य या धर्मका बोध मिलता है, जिससे हमारा इहलोक और पारलौकिक जीवन सुधरता है। इसलिये उनके प्रति हमारा विशेष कर्तव्य होता है। इसी तरह माता-पिता आदि उपकारी जनोंका हमारे जीवन-निर्माणमें बहुत बड़ा हाथ है; इसलिये उनके प्रति भी दूसरोंकी अपेक्षा हमारा कुछ विशेष कर्तव्य हो जाता है। पारिवारिक जनों, समाज तथा देशके लोगोंके प्रति, गुरुजनों एवं माता-पिताकी अपेक्षा कर्तव्य कुछ कम होता है। यही तारतम्य सर्वत्र दिखायी देता है।

मानवके लिये सबसे पहला काम है---अपनी आत्माका उत्थान। इसीलिये धर्मको मुख्य कर्तव्य माना गया है। यह मनुष्य-जीवन बहुत लंबे कालके बाद और बहुत पुण्यसे मिलता है। और इसमें धर्मकी आराधना-जैसा कार्य जैसा मनुष्य कर सकता है, वैसा अन्य कोई भी प्राणी नहीं कर सकता। इसीलिये कहा गया है कि मनुष्य-जन्मके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

धर्म अनेक प्रकारके बतलाये गये हैं और उन्हें वैसे तो साधारण कर्तव्यसे बहुत ऊँचा माना गया है। पर करने योग्य कार्यको यदि हम कर्तव्य कहें तो सबसे पहले करनेका काम तो यही है कि अनादि कालसे जो कर्म हमें बाँधते आ रहे हैं, उनमेंसे सबसे पहले अशुभ कर्मोंके बन्धनको हम रोकें और शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त हों। अन्तमें तो शुभ और अशुभ दोनोंसे ही पृथक् हो जाना है और तभी मुक्ति मिलेगी। धार्मिक कार्य हमें अशुभ प्रवृत्तियोंसे बचाकर शुभ प्रवृत्तियोंमें जुटे रहनेकी प्रेरणा देते हैं।

मनुष्य प्रतिपल कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। इसीलिये गीतामें कहा गया है कि कर्मोंकी आसक्ति और फलकी आशाका त्यागकर कर्तव्य-कर्म करते जाओ। वास्तवमें हमने बहुत-से कर्तव्य मान रखे हैं और जब-तक आसक्ति है, तबतक यह जाल बिछा ही रहेगा। इसीलिये हमें अपने माने हुए कर्तव्योंकी भी छटाई करनी होगी। जिन कर्तव्योंसे आत्माका उद्धार होता हो, उनको प्रथम कर्तव्य माना जाय और अवशेषको साधारण कर्तव्य। जिनसे आत्माकी अवनति हो, ऐसे कामों-को तो कर्तव्य मानना ही नहीं चाहिये। कर्तव्यके पालनसे आनन्दकी अनुभूति होती है, न करनेसे आत्मग्लानि; अतः कर्तव्यपालनमें सजग रहना है।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा

(लेखक—सेठ श्रीगोविन्ददासजी, श्रीमती रत्नकुमारी देवी, श्रीगोविन्दप्रसादजी श्रीवास्तव)

[गताङ्क पृष्ठ ९३९ से आगे]

दिनाङ्क १८ सितम्बरके अपराह्ण केरलकी राजधानी त्रिवेन्द्रम्से हम कन्याकुमारीके लिये विदा हो गये। जिस समय हमने मोटर-बससे त्रिवेन्द्रम् छोड़ा, उस समयसे कन्याकुमारी पहुँचनेतक मोटर-बसमें केरलपर हमारी चर्चा होती रही। यह शायद इसलिये कि स्वाधीनताके बाद केरलकी राजनीति जैसे-जैसे नये-नये रंग लायी, वैसे अबतक देशके किसी अन्य प्रदेशके राज्यकी नहीं। आखिर केरलकी राजनीतिमें ये नये-नये गुल कैसे खिले, यह एक विचारका विषय है, जो सभी विचारशील व्यक्तियोंके सामने अनेक प्रश्न-सूचक चिह्न रखता है। केरल राज्यकी इस समयकी सरकार कांग्रेस और प्रजा-समाजवादी दलकी मिली-जुली सरकार थी, जिसे अन्य कुछ स्वतन्त्र सदस्योंका समर्थन भी प्राप्त था। इसके पहले केरलमें साम्यवादी सरकार थी, उसके पहले राष्ट्रपतिका शासन और सबसे पहले कांग्रेस-दलकी हुकूमत। सम्भव है आगे फिर भी कांग्रेस दलकी ही हुकूमत आ जाय। हमारे सामने प्रश्न यह नहीं कि केरलमें आगे कांग्रेस-दलकी हुकूमत कैसे बने अथवा अन्य दलोंको हम कैसे विजयी करें; वरं केरलमें स्वाधीनताके पश्चात् इस थोड़े-से समयमें जो परिवर्तन हुए, उनकी वजह क्या है—इसपर गौर करना ही हमें अभीष्ट है। आखिर इस क्षेत्रमें ऐसी राजनीतिक उथल-पुथल और साम्यवादियोंके ऐसे दौर-दौरेका क्या कारण है। गरीबीमें साम्यवाद पनपता है, यह एक मानी हुई बात है। परंतु भारतमें क्या केवल केरल ही गरीब प्रान्त है? केरलसे कहीं अधिक गरीबी उड़ीसामें है। अतः गरीबी एक कारण होते हुए भी इस समस्याके अन्य कारण भी हैं। केरल देशका सर्वाधिक शिक्षित प्रदेश है या यों कहना चाहिये कि जितने प्रतिशत शिक्षित केरलमें हैं, उतने अन्य प्रदेशमें नहीं। गरीबीके क्लेशोंका निवारण साम्यवादसे सम्भव है—यह यहाँके लोगोंका विश्वास है। दूसरी बात जो है, वह है हमारी शिक्षा-प्रणालीका सदोष होना। वर्तमानमें हमारी शिक्षा-प्रणाली केवल आजीविकाका एक साधन बन गयी है। और हर शिक्षित व्यक्ति, चाहे वह नीचेके किसी पदपर हो अथवा ऊँचे किसी बड़े ओहदे-पर, अपनी प्राप्त शिक्षा-योग्यताको वह अपनी आजीविकाकी कसौटीपर कसता है। आर्थिक दृष्टिसे अथवा भौतिक-सुख-साधनोंके अभावमें, जिनसे कभी मानवकी तृप्ति हो भी नहीं सकती, उसके मनमें असंतोष होता है और यह असंतोष बुद्धि-वैषम्यपर आधारित होनेके कारण समाज विषमताके प्रति विद्रोही हो उठता है। आगे चलकर यही वर्ग-संघर्षका रूप धारणकर हिंसा-प्रवृत्तिप्रधान साम्यवादका पोषक बन जाता है। सामाजिक विषमताकी आधार-भित्ति आर्थिक विषमता ही है, और यह आर्थिक विषमता किसी भी देश अथवा समाजसे शनैःशनैः ही दूर की जा सकती है, जादू अथवा किसी नैसर्गिक उपायसे कदापि नहीं। हमने विषमताकी इस खाईको पाटनेके लिये समाजवादी समाज-रचनाके जिस सिद्धान्तको स्वीकार किया है, उसकी पूर्तिके लिये अपने उपलब्ध साधनोंको देखते हुए हमें काफी श्रम, समय, और धैर्यकी आवश्यकता है। किंतु देशका एक ऐसा वर्ग, जो साम्यवादके द्वारा येन केन प्रकारेण तुरंत इस खाईको पाटनेपर आमादा है, हमारे राजनीतिक क्षेत्रमें यत्र-तत्र उथल-पुथल मचाता नजर आता है। भारतकी जैसी सामाजिक रचना है, विश्वके अन्य किसी देशकी नहीं। भारत एक सांस्कृतिक देश है, यहाँ अर्थ और भौतिक उपलब्धियोंसे बड़ी भी कोई वस्तु है और वह है हमारा अध्यात्म। अध्यात्मकी संस्कृतिपर अमिट छाप है। भारतीय संस्कृति, जिसका विश्वमें बोलबाला है, भारतीय अध्यात्मकी ही देन है। यानी सही मानेमें हमारी संस्कृतिका आधार ही अध्यात्म है। संग्रह विग्रहका हेतु होता है और इसीलिये हमारा अध्यात्म संग्रहका नहीं, अपितु अपरिग्रहका पोषक है। संसारके आज बड़े-बड़े समृद्ध राष्ट्र भौतिक दृष्टिसे ज्यों-ज्यों समृद्धिके शिखरकी ओर बढ़ रहे हैं, एक नये वाद-विग्रहको वे इस प्रगतिके साथ ही जन्म भी देते जा रहे हैं। इस बढ़ते हुए विग्रहकी समाप्तिके लिये आज विश्वमें प्रधान रूपसे दो ही मार्ग हमारे सामने नजर आ रहे हैं—एक समाजवाद, दूसरा साम्यवाद। अपने ढंगका

समाजवादी समाज-रचनाका सिद्धान्त हमने स्वीकार भी किया ही है। दूसरा, जिससे वर्तमानमें और आगे भी हमें टक्कर लेनी है, वह है रूस अथवा चीनका साम्यवाद। समाजवाद हो, साम्यवाद हो अथवा अन्य कोई वाद, भारतमें भारतकी जलवायु, यहाँकी मिट्टी और संस्कृतिके अनुरूप ही कोई वाद पनप सकता है। भारत सनातन कालसे ही सहृदयता, सहिष्णुता, सेवा, सौहार्द और परस्परके सद्भावका स्रष्टा रहा है। इन विशिष्ट गुणोंके कारण ही भारतीय संस्कृति समन्वयकी संस्कृति है—जिसमें वैर-बुराई, हिंसा-प्रतिहिंसा आदि दुर्गुणोंको कोई स्थान नहीं है। ऐसी संस्कृतिवाले देशमें ऐसा कोई वाद, जिसमें हिंसा और शक्ति-प्रयोगकी सम्भावना हो, पनप नहीं सकता। यदि हमारे अज्ञान और प्रमाद तथा असावधानीसे पनप भी गया तो वह हमारी सनातन संस्कृतिके विपरीत होगा। इतना ही नहीं, वह भारतकी भाग्यहीनताका एक ऐसा बढ़ता हुआ भयावह कदम होगा, जिसके हर पगके साथ भारतकी भारतीयता लुप्त और उसकी संस्कृति सुप्त होती जायगी।

इस भयावह स्थितिसे अपनेको बचाये रखनेके लिये हमें ऐसे किसी वादसे बचने अथवा उसके मुकाबिलेकी जरूरत न होकर जरूरत इस बातकी है कि हम अपनेको इस बातके लिये राजी करें और तैयार रक्खें कि विश्वका कोई भी ऐसा वाद, जो हमारे विचारों, हमारी सामाजिक रचना और संस्कृतिसे मेल नहीं खाता, यदि भारतकी ओर बढ़े तो हम उसकी मुकाबिला कर सकें और उसे ऐसी शिकस्त दे सकें कि वह यहाँकी जलवायुमें कभी पनपे ही नहीं। इसके लिये हमें अपनी शिक्षा-प्रणालीमें आमूल परिवर्तन करना होगा और इस परिवर्तनमें भारतीय संस्कृतिके मूल आधार, अध्यात्मका, जिसकी विभिन्न शाखाओंके बदौलत ही हमारी संस्कृतिका वह विशिष्ट रूप है, जिसका आज सारे विश्वमें आदर है—एक महत्त्वपूर्ण पाठ्यक्रमके रूपमें अनिवार्य रूपसे प्रारम्भ करना होगा। हमारे शिक्षाशास्त्रियोंद्वारा समय-समयपर सरकारका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट किया जाता रहा है, किंतु दुर्भाग्यसे सरकारने जीवनके इस महत्त्वपूर्ण अङ्गकी अभीतक उपेक्षा ही की है। इसके विपरीत हर ऐसे संकटपर, जो हमारी संस्कृति और हमारी राष्ट्रीयताके लिये चुनौती बनकर आता है, उसके मुकाबिलेके लिये हमारा अध्यात्म ही सर्वप्रथम सबसे आगे आता है। अपरिग्रह, शौर्य, वीरता, दया, क्षमा, दान, संयम और उत्सर्ग आदि भावनाओंको, जो हमारी संस्कृतिका शृंङ्गार हैं, उद्दीप्त करनेमें अध्यात्मसे अधिक और कौन समर्थ है? आजकी भारतीय शिक्षाप्रणाली न केवल अध्यात्मसे अछूती है, वरं उसमें भारतीयताका ही अभाव है। जैसी शिक्षाप्रणाली होती है, वैसी ही नयी पीढ़ी बनती है। तिरुपति विश्वविद्यालयकी शिक्षाप्रणालीके सम्बन्धमें लिखते हुए हमने मुसोलिनीके समयकी इटली और हिटलरके समयकी जर्मनीकी शिक्षा-प्रणालीका उल्लेख करके यह कहा है कि उस समयकी इटली और जर्मनीकी उस शिक्षा-प्रणालीद्वारा शिक्षित नयी पीढ़ी यह मानने लगी थी कि इटलीका उपकार फासिस्टवादसे और जर्मनीका उपकार नास्तिवादसे ही हो सकता है। हमें भय है कि यदि हमारी शिक्षा-प्रणालीमें आमूल परिवर्तन नहीं हुआ तो केरलमें जो कुछ हुआ, उसकी पुनरावृत्ति होगी और न केवल केरल, वरं भारतके अन्य स्थान भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे। और ऐसी स्थितिमें स्वाभाविक ही है कि हम अपने अज्ञानके कारण अपने निर्दिष्ट पथसे अनायास ही पथ-भ्रष्ट हो किसी ऐसे वादके झमेलेमें पड़ जायँ, जो न केवल अभारतीय हों वरं भारतकी सांस्कृतिक सत्तासे सर्वथा बेमेल हो। यदि यह हुआ तो भारत भारत न रहकर एक अस्तित्वहीन व्यक्तिकी भाँति किसी गुट-विशेष अथवा वाद-विशेषका कठपुतला बन जायगा। हमें विश्वकी तेजीसे बदलती हुई परिस्थितियोंमें सदा चौकन्ना रहना है और भारतकी सांस्कृतिक प्रभुसत्ताकी रक्षाके लिये उत्तरदायी भारतकी नयी पीढ़ीको अपनी निजकी शिक्षा-प्रणालीद्वारा शिक्षितकर हर ऐसे विदेशी वादके मुकाबिलेके लिये तैयार करना है, जो हमारी सार्वभौमिकता, हमारी स्वाधीन सत्ताके लिये एक चुनौतीके रूपमें हमारे सामने आये। हम अपना अस्तित्व बनाये रख सकें, यही आजकी हमारी महती आवश्यकता है और अतीतके अनुभवोंसे भी हमें यही सीख और शिक्षा मिलती है कि हम किसी वाद-बहाव अथवा भौतिक प्रगतिके किसी ऐसे आकर्षक कठघरेमें जानेसे अपनेको बचाये रक्खें, जो आगे चलकर जीवनके स्वाधीन स्रोतोंके लिये एक कैद सिद्ध हो। यह सब हमारी शिक्षापर निर्भर करता है--ऐसी शिक्षापर, जिसका हर

पाठ स्वावलम्बन, स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य-प्रेम और स्वराष्ट्र-प्रेमसे प्रारम्भ होता है।

त्रिवेन्द्रम्‌से कन्याकुमारीके इस रमणीक मार्गको देखते संध्याके सुहावने मौसममें ठीक छः बजे हमारी मोटर-बस कन्याकुमारीके बस-स्टैंडपर जा रुकी। बससे उतरते ही असबाब उतार आवासकी तलाश की और कन्याकुमारी-मन्दिरके निकट एक सुन्दर आवासगृहमें अपना डेरा डाल दिया।

कन्याकुमारीके धार्मिक महत्त्वपर विचार करनेसे पूर्व हम इसके प्राकृतिक गौरवको लेते हैं, जो हर देश, हर धर्म, हर विश्वास और हर रुचिके पर्यटकको सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

कन्याकुमारी तीन ओर समुद्रसे घिरा है। इसके पूर्वमें बंगालकी खाड़ी, पश्चिममें अरब सागर और दक्षिणमें हिंदमहासागर है। यहाँ भारतकी सीमाका अन्त हो जाता है, जहाँ पर्यटक खड़ा होकर सूर्यका उदय और अस्त देख सकता है।

कन्याकुमारीके सूर्योदय और सूर्यास्तका मनोमुग्धकारी रूप भारत ही नहीं, सारे संसारमें प्रसिद्ध है। गोविन्ददास कन्याकुमारीके सूर्योदय और सूर्यास्तके मुग्धकारी स्वरूपके पहले भी दर्शन कर चुके थे, किंतु हम सबके लिये तो इन दोनों ही दृश्योंने एक अदेखे आकर्षणके रूपमें कन्याकुमारी-आगमनके साथ ही अपनी ओर आकृष्ट कर रक्खा था और हम अधीरभावसे उस सुनहरे प्रभातकी प्रतीक्षा लिये रातको अपने बिस्तरोंपर सोये, जिसके दर्शन बिना कन्याकुमारी-दर्शन सफल और सार्थक नहीं माना जाता। निशा गत हुई और आगत प्रभातके संदेशवाहक मुर्गेने ज्यों ही बाँग लगायी, हमने अपने बिस्तर छोड़ दिये और नित्य-नेमसे निवृत्त हो प्रभातके जनक प्रभाकरके दर्शनके लिये उनके प्रवेशके पूर्व ही अपने आवासगृहके निकट लहलहाते सिन्धु-तटपर खड़े हो सूर्य-दर्शनके सुहावने क्षणकी प्रतीक्षा करने लगे। प्रतीक्षाकी घड़ियाँ क्षण-क्षण बीतने लगीं, इसी समय सुदूर बंगालकी खाड़ीमें चञ्चल लहरें प्रसव-पीड़ासे थिरकती हुई हमारे दृष्टिपथसे टकरायीं। हम टकटकी बाँधे उन लहरोंको देख रहे थे, देखते रह गये। सिन्धुकी प्रसव-पीड़ाको हम अनुभव कर रहे थे कि उनकी उस थिरकनमें एक आह्लाद, एक उल्लास, एक आभाके मुग्धकारी स्वरूपके हमें दर्शन हुए। शिशुकी भाँति कल्लोलें करता बाल-रवि अपनी कलाओंकी आभामें दमकता जब समुद्रकी जल-सतहसे ऊपर उठा तो जान पड़ा, निराकार साकार हो गया। दृश्यसे ऐसा भासता था मानो रत्नाकरने रवि-रत्नको जन्म दिया हो। उधर रत्नाकर अपनी ऊर्मियोंके उफानमें उल्लास भरता, कभी कोलाहल-सा करता रविका जन्मोत्सव मना रहा था। इधर हमारे निकट खड़ा बालचरोंका समूह किलकारी मार और कूद-कूदकर अपने द्विगुणित उत्साहसे जलधिके घर हुए शिशु-जन्मकी सूचना दे धूम मचा रहा था। उदधिकी गोदमें ललकते शिशु-से प्रभाकरकी प्रभामें उनके निकट ही हमें अनेक पंक्तिबद्ध वर्तमान तनी नावें दृष्टिगोचर हुईं, जो मानो रातभर रत्नाकरके उदरसे रत्नोंका मन्थन करनेके बाद अपना पड़ाव डाले अब विश्राम ले रही थीं। रवि-जन्मके साथ उदधिकी ऊर्मियोंमें ज्यों ही हलचल बढ़ी, नावें भी गतिशील हो गयीं और नावोंके मछुवे, जो रातभर अपने कार्य-व्यापारमें लगे रहे, सूर्य-किरणोंके बढ़ते हुए प्रकाशमें अपनी और सिन्धुकी उपलब्धिका संदेश ले लौट पड़े। एकटक कुछ देरतक हम सूर्यके शैशवको, उसके मनोहारी रूपको देखते रहे। उदीयमान बालरवि उदधिकी उत्ताल तरंगोंसे अठखेलियाँ करता हुआ कुछ ही क्षणोंमें अपनी प्रखर किरणोंसे भूमण्डलको आलोकित करता गगनमण्डलकी सैर करने लगा। उसके सामर्थ्य, शौर्य और तेजसे व्याप्त इस रूपसे अनायास ही हमारे नेत्र नत हो गये और हमने नतमस्तक प्रणाम करके विदा ली। संध्याको गांधी-मन्दिरकी छतपर अस्ताचलगामी सूर्यको देखने हमलोग फिर एकत्र हुए। अपनी समस्त आभा, आलोक और रश्मियोंको अपनेमें समेट अस्त होता हुआ सूर्य ऐसा जान पड़ा मानो अरब-सागरमें जल-समाधि ले रहा हो। अपने समग्ररूपसे अस्त हो रहे सूर्यका यह दृश्य जब हम देख रहे थे, हमारे अन्तरङ्गमें नाना विचारों, नाना भावनाओंकी सृष्टि होने लगी। प्रभातके उदित बालरविकी भाँति एक बात मनमें आती और अन्तःकरणमें अपने विस्तारके साथ अस्ताचलगामी अरबसागरमें लीन हुए

सूर्यकी भाँति ही हमारे अन्तःकरणमें ही विलीन हो जाती। आज ही उदित रविके मुग्धकारी स्वरूपके हमने दर्शन किये थे और उसके समाधिस्थ स्वरूपको भी हम देख चुके थे। इस समय हमारी आँखोंके सामने भारतका सम्पूर्ण इतिहास एक चित्रपटकी भाँति घूमने लगा। भारतकी धरतीपर उत्कर्ष और अपकर्ष, उत्थान और पतनके न जाने कितने दृश्य यह सूर्य देख चुका है, भारतका भाग्य-सूर्य न जाने कितनी बार इस प्रकार उदित और अस्त हुआ है; किंतु यह अविचल योगीकी तरह अपने उसी रूपमें, उसी गतिसे और उसी स्थानमें उदित होकर उसी स्थानमें आदिकालसे अस्त होता आ रहा है—उस निष्काम योगीकी तरह, जिसका जीवन-लक्ष्य साधना है और साध्य है समाधि। इन्हीं भावनाओंमें डूबे गांधी-मन्दिरकी छतसे वापस हो हम सिन्धुतटपर पहुँचे। अपार सागर उत्ताल तरङ्गोंमें लहरा रहा था। इधर हमारे अन्तःकरणमें भावनाओंका एक सागर लहलहा उठा।

जिस गांधीमन्दिरके छतसे हमने अभी अस्त होते सूर्यके दर्शन किये, उस मन्दिरके देव, भारतीय स्वाधीनताके अधिष्ठाता महात्मा गांधी भी एक सूर्य ही तो थे, जो भारतके तिमिराच्छन्न गगन-मण्डलमें सूर्यके सदृश उदित होकर अपनी आभा, आलोक और प्राणदायिनी प्रखर रश्मियोंसे स्वाधीनताके सूर्यकी स्थापना कर विदा हो गये। अरबसागरमें लीन हुए प्रभाकरकी भाँति, समाधिस्थ संन्यासीकी भाँति अपनी साधनाके अन्तिम लक्ष्यपर पहुँच सो गये। पर नहीं। प्रभाकर अपनी आभा, अपने समस्त आलोक और समूल अस्तित्वसे ही अस्त होता है; बापूने ऐसा नहीं किया। वे गये; पर अपने पीछे स्वाधीनताका वह चमचमाता सूर्य-प्रकाश दे गये, जिसके प्रकाशमें ही मानव-जीवन और उसके सभी अङ्ग प्रकाशित होते हैं और जिसके अभावमें व्यक्ति, समाज और देशका जीवन, निशा-सा नीरस और अन्धकारमय बन जाता है। फिर रत्नाकरमें लीन हुए अपनी कलाओंसहित मोहन अपनी कलाओं, अपने आदर्शों और अपने सिद्धान्तोंको हमें सौंप गये, जिनके सहारे हम और हमारी पीढ़ियाँ आज और आगे स्वाधीनताके प्रकाशमें पग-पर-पग बढ़ते हुए अपना जन्म और जीवन सफल कर सकेंगी। बापूका भौतिक शरीर नष्ट हुआ। इस भौतिक विश्वमें कौन वस्तु स्थायी है ? जो स्थायी है, शाश्वत है, सत्य है, चिरंतन है, उस सत्यकी स्थापनामें अपनेको समर्पित करनेवाला व्यक्ति भौतिक रूपसे इस भौतिक सृष्टिसे विदा होनेपर भी सदा इसमें कायम रहता है, अमर बना रहता है। जीवनका जो आदर्श अपने जीवनमें बापूने बनाया, वह उनके समग्र जीवनके रूपमें आज हमें एक ऐसे सत्यका साक्षात्कार करा रहा था, जिसके सहारे निर्बल-से-निर्बल, असहाय, दीन-दुखी, दुर्बल और दरिद्र, पीड़ित व्यक्तिके भी कण्ठसे आज यही आवाज निकल रही है—हममें स्वाभिमान है, स्वदेशप्रेम है, हम बलिदानी हैं, स्वतन्त्र भारतवासी हैं। आज एक उल्लास, एक आनन्द, एक भावमस्तीमें रह-रहकर जी करता जी भर इस लहलहाते सिन्धुको देख लें और जी भर सिंधु हमें देख ले। आज उदधिकी उठती हुई ये ऊर्मियाँ कितनी मोहक, कितनी सुहावनी थीं, हवाके चलते हुए झोंके जो सिन्धुसे हमारा समागम करा रहे थे, जब अपने शीतल प्रवाहसे कभी हमारे कपोलोंको सहलाते, उनपर जलकण बरसाते, कभी कानमें कुछ कहते हमारे ऊपर और आसपाससे गुजरते, जान पड़ता ये भी आज अपनी मस्तीमें झूम रहे हैं, अथवा सिन्धुसे हमारा और हमसे सिन्धुका संदेश वहन कर रहे हैं। जान पड़ा, आज हम जितने खुश हैं, खुशहाल हैं, उतने कभी नहीं थे। रत्नोंके आगार रत्नाकरके सम्मुख खड़ा कौन दुखी, अतृप्त और दीन रह सकता है। हम आज स्वाधीन थे और खड़े थे स्वाधीनदेशके एक स्वाधीन सिन्धुतटपर। आज यह लहराता अपार सागर हमारा था और हम उसके। आज न केवल हमपर और हमारे इस विस्तीर्ण सिन्धुपर ही हमारा अधिकार था, वरं इस बहती हुई हवापर, इसके ऊपर निर्मल नभपर, नीचे शस्य-श्यामला भूमिपर और उसके कण-कणपर, जलधिके प्रत्येक जलकणपर हमारा ही अधिकार था—केवल हमारा अधिकार। मातृभूमिके दो ममताभरे प्यालोंके सदृश हमने ललककर एक ओर सिन्धुका स्पर्श किया, दूसरी ओर उसके तटकी पावन मिट्टीका। जीव और देहके रूपमें दोनोंका कैसा पावन और प्राणदायी सम्बन्ध है! एक घट है तो दूसरा अमृत। भारतका और उसके तटपर लहराते

विस्तीर्ण जलधिका यही सम्बन्ध है। भारतके सीमाङ्कनमें हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीकी बात कही जाती है—'लोट रहा चरणोंमें सागर, सिरपर मुकुट 'हिमालयका' के गीत गाये जाते हैं। देशके छात्रोंको पाठ्य-पुस्तकोंमें उत्तरमें हिमालयकी महिमा और दक्षिणमें कन्याकुमारीका यशोगान पढ़ाया जाता है तथा देशके मानचित्रमें इन दो दिशाओं, दो ध्रुवोंको सगौरव दिखाया जाता है। गतवर्ष हमलोगोंने उत्तराखण्डकी यात्रामें देशकी उत्तरी सीमाके प्रहरी नगाधिराज हिमालयका भ्रमण किया था, उसकी महिमाका निकटसे स्वयं उसके अतिथि बन साक्षात्कार किया था, आज हमलोग देशके द्वितीय ध्रुवको कन्याकुमारीके आँचलमें, जिसके चरणोंमें सृष्टि-लयकी सामर्थ्यवाला सिन्धु लोट रहा है, अपने सामने देख रहे थे। कैसा मनोरम दृश्य था। पयोधिकी उत्ताल तरङ्गें पल-पल अपने तटकी पृथ्वीका आलिङ्गन-चुम्बन कर लौट जातीं, फिर-फिरकर आतीं! सेवा, सत्कार और समर्पणकी भावनासे भरे उदधिकी ऊर्मियोंमें कितनी शक्ति और भाव-भक्ति भरी हुई थी, इसकी कल्पना करते ही हमारे भीतर स्वाभिमान, देशाभिमानका सागर उमड़ पड़ा। धन्य है भारतभूमि और धन्य हैं भारतमें जन्म लेनेवाले नर-नारी; जिन्हें ऐसी दिव्य, पवित्र और अलौकिक धरा मिली।

संध्याके झुलपटेमें हमलोग उल्लासभरे मनसे अपने निवासस्थानपर लौट आये।

ऐतिहासिक और पौराणिक मान्यताओंसे सिद्ध होता है कि कन्याकुमारी प्राचीन कालमें भी महत्त्वका स्थान रहा होगा। एक पौराणिक मान्यताके अनुसार गोआसे कन्याकुमारीतककी भूमि, जिसे आजकल केरल कहा जाता है, विष्णुके छठे अवतार श्रीपरशुरामके प्रयत्नोंके फलस्वरूप प्रकट हुई थी। कहा जाता है कि जब ब्राह्मणोंको दान करनेके लिये परशुरामको भूमिकी आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने समुद्रके देवता 'वरुण' पर दबाव डाला। वरुणकी आज्ञा पाकर परशुरामने जब गोआसे अपनी कुल्हाड़ी उछालकर फेंकी तो वह कन्याकुमारीको पारकर समुद्रमें जा गिरी। बीचमें समुद्रने स्थान खाली कर दिया और गोआसे कन्याकुमारीतककी भूमि ऊपर आ गयी, जिसे आजकल केरल कहते हैं। किंतु यह ऐतिहासिक सत्य नहीं। इतिहासविज्ञोंके अनुसार यह स्थान शताब्दियों पूर्व पाण्ड्य राजाओंके अधीन था, जिन्होंने प्रचुरकालपर्यन्त सम्पूर्ण तमिळनाडपर राज्य किया। कन्याकुमारीकी शिल्प और वास्तुकला तथा लोगोंके रहन-सहनके ढंगपर तमिळ-प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मन्दिर भी तमिळ-निर्माणशैलीके आधारपर बने हुए हैं। इससे उक्त ऐतिहासिक तथ्यकी पुष्टि होती है। और भी ऐसे अनेक प्रमाण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि कन्याकुमारी प्रचुरकालतक पाण्ड्य राजाओंके अधीन रहा। देवी 'कुमारी' पाण्ड्य-राजकुलकी भी आराध्य-देवी थीं। परशुरामवाली कहानीके अतिरिक्त यह जनश्रुति भी है कि प्राचीनकालमें कन्याकुमारीके दक्षिणमें भी भूमि थी, जिसे बादमें समुद्र बहा ले गया; किंतु इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

कन्याकुमारीके नामकरणके सम्बन्धमें अनेक धारणाएँ हैं और इस जिज्ञासाको शान्त करनेके लिये भी हमें जन-श्रुतियोंका आश्रय लेना पड़ता है। राजा भरत, जिनके नामपर हमारे देशका नाम भारत पड़ा, कहा जाता है कि उनके आठ पुत्र एवं एक पुत्री थी। जब राजा भरतने राज-काजसे संन्यास लेना चाहा, तब उन्होंने राज्यके नौ भाग किये और अपनी प्रत्येक संततिको एक-एक भाग सौंप दिया। देशका दक्षिणी भाग उनकी पुत्रीको मिला। तभीसे इस क्षेत्रका नाम कुमारी पड़ गया। पौराणिक आधारपर देवी पराशक्तिने भी यहीं अवतरित होकर तप किया। एक अन्य पौराणिक मान्यताके अनुसार एक बार असुरोंका देवताओंसे अधिक प्रभाव हो गया। परिणामस्वरूप अधर्म धर्मपर हावी होने लगा। सर्वत्र अज्ञान और अन्याय फैलने लगा। स्त्रियोंका सतीत्व भङ्ग होने लगा और असुराधिपति बाणासुरका तीनों लोकोंपर साम्राज्य हो गया। उसने देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया और ऋषियों-मुनियोंको कठोर यन्त्रणाएँ दीं। इन सब अत्याचारोंसे दुखी होकर पृथ्वी माता संसारके रक्षक भगवान् विष्णुके पास गयीं और उनसे अधार्मिक शक्तियोंके नाशकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णुने पृथ्वीको उत्तर दिया कि केवल पराशक्ति ही बाणासुरके नाशमें समर्थ है। अतः देवताओंको उसीकी आराधना करनी चाहिये। भगवान् विष्णुसे आज्ञा पाकर देवताओंने एक बृहत् यज्ञका अनुष्ठान किया, जिसमें पराशक्ति प्रकट हुई। पराशक्ति

तुरंत एक छोटी-सी बालिकाके रूपमें पृथ्वीपर उतरीं और तप करने लगीं। जब वे युवावस्थामें पहुँचीं, तब भगवान् शिवका उनसे प्रेम हो गया। दोनोंके विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। नारदजीको इससे चिन्ता हुई कि यदि दोनोंका विवाह हो गया तो बाणासुर-वध टल जायगा। जब विवाहके लिये नियत समयपर शिवजी चले, तब शुचीन्द्रम्से तीन मीलकी दूरीपर नारदजी एक मुर्गेका रूप धारणकर बाँग देने लगे। शिवजीने समझा कि विवाहका समय बीत चुका है और वे निराश होकर शुचीन्द्रम् वापस लौट आये। उधर कुमारी पराशक्तिने आजीवन अविवाहित रहनेका प्रण कर लिया। इसी समय विवाहके लिये तैयार किये गये सभी खाद्यपदार्थ रेतके रूपमें परिवर्तित हो गये और कहा जाता है कि इसीलिये कन्याकुमारीकी रेतमें अनेक रंग हैं। नारदजीद्वारा मुर्गेके रूपमें बाँग देने मात्रसे शिवजीके यह समझ लेनेपर कि विवाहका समय बीत गया है, सहसा हम विश्वास न करें—यह अस्वाभाविक नहीं। किंतु पौराणिक आख्यानोंमें हमें ऐसी बहुत-सी घटनाएँ और उदाहरण मिलते हैं जिनमें देव-कल्याण अथवा लोक-कल्याणके निमित्त आदिपुरुष अथवा अवतारी-को हम जनसाधारणके सदृश कार्य करते तथा उसके अनुरूप मति-भ्रमसे भ्रमित होते देखनेके अनेक अवसर पाते हैं। और बहुधा इन प्रसङ्गोंकी रचना और उसका हेतु भी एक पावन और सर्वमङ्गलभावसे प्रेरित होता है। फिर प्रेम अथवा मोह, जिसमें पड़े शिवजी वरका रूप धारणकर अपने लिये वधू लेने जा रहे थे, स्वयंमें एक ऐसा आवरण है, जिसमें मति-भ्रम असंगत नहीं, अपितु सर्वथा संगत ही है। इसपर भोलेनाथ! अतः नारदजीको अधिक परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी और अपने भोलेनाथको बरगलानेके लिये उन्होंने मुर्गेका एक सहज स्वरूप धारणकर ही अपना मनोरथ साध लिया।

उधर बाणासुरने कुमारी पराशक्तिके सौन्दर्यका वृत्तान्त सुन उनसे विवाहकी इच्छा प्रकट की। कोई अन्य उपाय न देख उसने उन्हें बलपूर्वक प्राप्त करना चाहा। दोनोंमें पर्याप्त समयतक घोर युद्ध हुआ और अन्तमें पराशक्तिने उसका चक्रायुधसे वध कर दिया। यहाँकी जनता आज भी देवी पराशक्तिके इस कृत्यके प्रति कृतज्ञ है और 'बाणासुर-वध'-दिवस आज भी 'नवरात्र पर्व'के रूपमें यहाँ समारोह-पूर्वक मनाया जाता है। नवरात्रके अतिरिक्त वैशाख अथवा मई मासमें एक अन्य पर्व भी मनाया जाता है और यह भी देवी पराशक्तिसे सम्बन्धित है। यह पर्व दस दिनतक मनाया जाता है। प्रत्येक दिन और रात्रिमें देवीका जुलूस निकाला जाता है, जो प्रमुख मार्गोंमें घूमता हुआ एक सरोवरपर जाकर समाप्त हो जाता है।

जैसा कि प्रारम्भमें कहा गया है, कन्याकुमारी तीन ओर समुद्रसे घिरा हुआ है। इसके तीनों ओर समुद्र-तटके साथ-साथ सावित्री, गायत्री, सरस्वती, कन्या, माथरू, बिथरू आदि अनेक पवित्र घाट हैं। तीनों ओर तीन विशेष स्नान-घाट भी हैं, जिनमें सोलह-सोलह स्तम्भोंपर एक मण्डप निर्मित है। इन मण्डपोंमें पंडे मन्त्रोच्चारके साथ यात्रियोंको स्नान-पूजन कराते हैं। कन्याकुमारीके इन घाटोंका धार्मिक महत्त्व भी कम नहीं है। लोगोंमें विश्वास है कि इन घाटोंपर स्नान करनेसे पाप-निवृत्ति होती है। इस सम्बन्धमें एक कहावत भी है कि पाप-निवृत्ति और पुण्य-प्राप्तिके लिये काशीमें गङ्गास्नान और कन्याकुमारीमें समुद्रस्नान समान फलदायी हैं।

कन्याकुमारीके ये ही प्राकृतिक और धार्मिक आकर्षण हजारों भारतीय एवं विदेशी पर्यटकोंको प्रतिवर्ष यहाँ खींच लाते हैं। उनकी सुविधा और आवास-व्यवस्थाके लिये सरकार और जनताकी ओरसे कुछ उल्लेखनीय कार्य किये गये हैं। देवस्थानम् और कुछ राजकीय भवन आवासके लिये यहाँ उपलब्ध हैं। केप होटल और रेस्ट हाउस भी हैं, जो आधुनिक साधन-सुविधाओंसे युक्त हैं। समुद्रतटपर एक "स्विमिंग-पूल" भी बनाया गया है, जिसमें यात्री बिना किसी खतरेके स्नान कर सकता है।

वर्तमान कन्याकुमारी एक छोटे-से ग्रामके रूपमें है, जिसकी जनसंख्या १९५१ की जनगणनाके अनुसार पाँच हजार है। यहाँ रोमन कैथोलिक ईसाइयोंका बाहुल्य है। यहाँके निवासी अधिकतर ईसाई हैं और समुद्रतटपर अपने छोटे-छोटे घरोंमें रहते हैं। उनका गिरजाघर भारतके प्राचीनतम और विशालतम गिरजाघरोंमेंसे एक है, जहाँ एक हजार लोग एक साथ बैठ सकते हैं। कुछ मुसलमान भी हैं और उनकी एक मस्जिद है।

कन्याकुमारीमें एक पुराने किलेके अवशेष भी दर्शनीय हैं। वट्टकोट्टाई समुद्रतटसे तीन मीलकी दूरीपर स्थित होनेके कारण इसे वट्टकोट्टाई फोर्ट (Vattakkottai Fort) कहते हैं। प्राचीन दुर्ग-निर्माण-कलाका परिचय देनेके लिये इसमें अभी भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। बताया जाता है कि मार्तण्डवर्माके शासनकालमें उनके प्रधान सेनापतिने इस दुर्गका सुरक्षाकी दृष्टिसे निर्माण कराया था। आजकल यह दुर्ग बाल स्काउटों, पर्यटकों एवं संध्या-भ्रमणके लिये आनेवालोंका अड्डा बना रहता है।

कन्याकुमारी-मन्दिरके अतिरिक्त यहाँके काशी-विश्वनाथ-मन्दिरका भी धार्मिक दृष्टिसे पर्याप्त महत्त्व है। कहते हैं कि जब देवी कुमारी (पराशक्ति) ने बाणासुरका वध किया, तब उनका चक्रायुध यहीं आकर गिरा। उसीकी स्मृतिमें यहाँ यह मन्दिर बनाया गया है। यह कन्याकुमारीसे एक मीलकी दूरीपर है।

कन्याकुमारी आनेवाला कोई भी पर्यटक प्रायः मरुत्वामला पहाड़ीके दर्शन किये बिना नहीं जाता। कहते हैं, रामायण-कालमें जब हनुमान्‌जी लक्ष्मणजीके उपचारके लिये संजीवनी बूटीसे युक्त पहाड़ लेकर जा रहे थे, तब उसका एक भाग यहाँ गिर पड़ा। लोगोंका विश्वास है कि इस स्थानपर थोड़ा समय बितानेसे ही बड़े-बड़े रोग और व्याधियाँ दूर हो जाती हैं।

कन्याकुमारीका एक प्रधान आकर्षण यहाँका गांधी-मन्दिर है। १८ फरवरी १९४८ को गांधीजीकी अस्थि-भस्म यहाँ समुद्रमें प्रवाहित करनेके लिये लायी गयी थी। प्रवाहित करनेसे पूर्व यहाँ जिस स्थलपर यह अस्थिपात्र रक्खा गया था, उसी स्थलपर एक दीर्घाकार सुन्दर दुमंजिले भवनका निर्माणकर उसे गांधीमन्दिर नाम दिया गया। भवनके नीचेके भागमें जिस स्थानपर बापूका भस्मपात्र एक चौकीपर रक्खा गया था, आज भी भवनके केन्द्रमें वह चौकी स्थायीरूपसे उसी स्थानपर सुरक्षित कर दी गयी है। इस मन्दिरका निर्माण त्रावणकोर-कोचीन सरकारने राष्ट्र-पिताके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलिके रूपमें कराया था। २० जून १९५४ को इसकी आधारशिला आचार्य कृपलानीने रक्खी और अक्टूबर १९५६ में यह तीन लाखकी लागतसे बनकर तैयार हो गया। इस मन्दिरकी छतमें एक ऐसा खोल बनाया गया है, जिससे प्रति दो अक्टूबरको गांधीजीके जन्मदिवस पर सूर्यकी किरणें इस खोलसे होती हुई उपर्युक्त चौकीपर पड़ती हैं। आगन्तुक और पर्यटक सभी श्रद्धाभावसे इस चौकीपर अपनी श्रद्धाञ्जलि और श्रद्धा-सुमन भेंट करते हैं। मन्दिर समुद्र-तटपर बना होनेके कारण इसका आकर्षण अत्यधिक बढ़ गया है।

कन्याकुमारीका एक और अन्य महान् आकर्षण यहाँका 'विवेकानन्द रॉक' है। सन् १८९२ में भारतके आध्यात्मिक पुनर्जागरणके प्रतीक स्वामी विवेकानन्दने रामेश्वरम् एवं मुदुराईके बाद कन्याकुमारीकी यात्रा की थी। यहाँ पहुँचते ही समुद्रमें स्थित एक शिलापर बैठकर स्वामी विवेकानन्द ध्यानमग्न हो गये थे और घंटों उसपर बैठे मनन-चिन्तन करते रहे। इसलिये इस चट्टानका एक दर्शनीय और धार्मिक महत्त्व हो गया है। इस चट्टानको, जिसपर बैठकर स्वामी विवेकानन्दने मनन-चिन्तन किया था, 'विवेकानन्द रॉक' कहते हैं। यह समुद्रके मध्य स्थित है और पर्यटक नाव-द्वारा इसे देखने जाते हैं। स्वामीजीकी स्मृतिमें यहाँ एक विवेकानन्द-पुस्तकालय भी है, जिसमें हिंदूधर्म, दर्शन एवं साहित्यिक पुस्तकों—लगभग पाँच हजार पुस्तकोंका सुन्दर संग्रह है। अब तो वहाँ एक विशाल मन्दिरका निर्माण हो रहा है।

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारतकी कुछ गिनी-चुनी विभूतियोंमेंसे एक थे। जिन स्वामी रामकृष्ण परमहंसके वे शिष्य थे, उन स्वामी रामकृष्ण परमहंसका भारतमें एक अद्वितीय स्थान हो गया है—इसी संतपरम्परामें स्वामी विवेकानन्दने उस समय, जब भारत पराधीन था, भारतीय अध्यात्म और भारतीय संस्कृतिके संदेशको सुदूर अमरीका-तक पहुँचाया और इस संदेशका वहाँ प्रतिफल मिला अमेरिकामें रामकृष्ण-आश्रमकी स्थापनाके रूपमें। स्वामी विवेकानन्दके मेधावी एवं विद्वत्तापूर्ण व्यक्तित्वका अमरीकामें पर्याप्त प्रभाव पड़ा और वहाँ उनके एक बहुत बड़ी संख्यामें प्रशंसक और अनुयायी बन गये। भारतको इस महा-पुरुषने उस कालमें जो एक सबसे प्रधान बात सिखायी—वह था उनका अभय-मन्त्र। भय मानव जातिके विकासमें एक सबसे बड़ी जटिलता है, बाधा है। वह मानवको न केवल मानवीय उपलब्धियोंसे वञ्चित रखता है वरं प्राकृतिक प्राप्तियोंकी दिशामें भी परमुखापेक्षी और परावलम्बी बना देता है।

(क्रमशः)

(१)

असुरतन्त्रके दूर करनेका उपाय

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण ! आपका कृपापत्र मिला। 'जनतन्त्र या असुरतन्त्र' शीर्षक लेख आपने पत्रोंमें पढ़ा, आपको अच्छा लगा सो आपकी कृपा है। आपने लिखा कि 'असुरतन्त्रके दूर करनेका कोई उपाय लिखना चाहिये था।' इसके उत्तरमें निवेदन है कि असुरतन्त्रके मिटनेका साधन दैवीतन्त्रकी स्थापना है। श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी और आसुरी सम्पदाका वर्णन है। असुर-मानवका सिद्धान्त और लक्ष्य होता है इन्द्रियोंके भोगोंकी प्राप्ति और उन्हें भोगना, साधन चाहे जैसा भी हो। देव-मानवका लक्ष्य और उद्देश्य होता है—भगवान् और भगवान्की प्राप्ति तथा उसके साधन होते हैं—भगवान्के अनुकूल कार्य और भोग-वासनाका त्याग।

एक युग था, जब देशमें क्रान्तिकारी हिंसायुक्त आन्दोलन था। उसके बाद गांधीजीका असहयोग आन्दोलन आया, जिसमें अहिंसाकी प्रधानता थी। इन दोनों ही प्रकारके आन्दोलनोंमें सम्मिलित होनेवाले, साथ देनेवाले अधिकांश लोगोंका—खास करके हजारों-हजारों नवयुवकोंका—लक्ष्य था देशकी स्वतन्त्रता और उसका साधन था—विशुद्ध देशप्रेम, देशके लिये कष्ट-सहन और बलिदान, अपने सुखका सब तरहसे त्याग। देशके लिये त्याग करनेका बदला उस समय केवल उनका देश-प्रेम ही था। क्रान्तिकारी युगको तो मैंने देखा है, उसमें तो उनको समाजसे तिरस्कार मिलता, घरवालोंसे बहिष्कार मिलता, सरकारसे यातनाएँ मिलतीं; पर वे इन बातोंमें बड़ा गौरव और सुख मानते कि देशके लिये हमारा बलिदान हो रहा है, हम जेल जा रहे हैं या फाँसीपर चढ़ रहे हैं। गांधीजीके असहयोग-आन्दोलनमें आगे चलकर सम्मान मिलने लगा था, जो प्रलोभनकी वस्तु थी; पर उस समय भी उद्देश्य देश-प्रेम था, देशको स्वाधीनताकी प्राप्ति करानी थी। पर जबसे हाथमें सत्ता आयी, देशके स्थानपर अधिकांशतः व्यक्तित्व सामने आ गया और जहाँ देशका स्वार्थ और व्यक्तिका (देशभक्तका) अपना स्वार्थ परस्पर विरोधी होते हैं, वहाँ व्यक्ति देशके स्वार्थपर विजयी होता है; क्योंकि उसीके हाथमें देशकी सेवा और देशकी उन्नतिका भार रहता है। वही जब देशको न देखकर अपने स्वार्थकी सिद्धि करने लगता है, तब देश-प्रेम उसकी स्वार्थ-सिद्धिका साधन बनकर देशको तबाह कर देता है। यही आज हो रहा है, यही असुरतन्त्रका कारण है। एक ही दलके लोग, एक ही नीतिको माननेवाले लोग जब परस्पर लड़ते हैं, अपनी शक्ति, अपने साधन, अपनी कला एक दूसरेको गिरानेमें लगाते हैं, तब देश कहाँ सामने रहता है ? आज देशकी यही स्थिति है और इसीलिये देशमें भ्रष्टाचार, अनाचार और अत्याचार फैल रहे हैं। इनके नाशका उपाय है—आत्मसुखकी इच्छाका, सुखोपभोगकी वासनाका त्याग और जनसुख एवं देशके सुखमें ही अपनेको सुखी माननेकी प्रवृत्ति। भगवान्की कृपासे, अच्छे भाग्यसे जब कभी देशमें देशसेवकोंकी बुद्धि इस प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थोंको छोड़कर देशके स्वार्थको अपना स्वार्थ बताने लगेगी और देशके कल्याणार्थ हर तरहके त्यागके लिये जब देशभक्त तैयार होंगे, तब अपने-आप ही दैवीसम्पदाका प्रसार होगा और देवतन्त्रका उदय होगा।

एक वाक्यमें कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि असुरतन्त्रका उद्देश्य है—भोग-वासनाकी तृप्ति और

देवतन्त्रका उद्देश्य है—भगवान् या समष्टिकी सेवा। आपने बड़े विस्तारसे लिखनेका आदेश दिया, पर मैंने संक्षेपमें सार बातें लिख दी हैं। आशा है, इससे आपको संतोष होगा। शेष भगवत्कृपा।

(२)

भगवत्कृपाकी वर्षा

प्रिय महोदय, सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। पहले भी कई पत्र मिल चुके हैं। साधनाकी व्यक्तिगत बातें प्रायः सबके सामने प्रकट करनेकी नहीं हुआ करतीं। तथापि आपका आग्रह है, इसलिये केवल इतना लिख रहा हूँ और सभीसे यही कहता भी हूँ तथा यह सत्य भी है कि मुझमें अपनी दृष्टिसे मुझे अनेक-अनेक दुर्बलताएँ प्रतीत होती हैं। साधनाका और भगवत्प्रेमका जो स्वरूप कल्पनामें आता है, वह तो कहनेमें नहीं आता और जिसको लोगोंके सामने कहा जाता है, उसके अनुसार देखनेपर अपनेमें बड़ी त्रुटियाँ प्रतीत होती हैं; पर साथ ही यह अवश्य अनुभव होता है कि भगवान्‌की अहैतुकी कृपा किसीकी साधनाको नहीं देखती। वह तो जो उसपर विश्वास करता है, उसपर अकारण ही सदा बरसती रहती है और उसे सब प्रकारसे विशुद्ध बनानेमें लगी रहती है। मुझे यह विश्वास अवश्य है और मैं यह अनुभव भी करता हूँ कि भगवान्‌की अहैतुकी कृपा मेरे ऊपर निरन्तर बरस रही है और अगर मेरेमें कोई अच्छापन दिखायी देता है तो वह उस भगवत्कृपाकी ही कृपाका फल है।

सम्मानकी चाह मनुष्यमें बहुत दूरतक बनी रहती है। मनुष्य भगवान्‌के नामपर अपने व्यक्तित्वका प्रचार और अहंकी पूजा करवाने लगता है। यह उसकी एक कमजोरी है। आपने मेरे सम्बन्धमें पूछा सो मुझे यही कहना चाहिये और यही लगता भी है कि इस कमजोरी-से मैं बचा नहीं हूँ। आपके कथनानुसार पुस्तकोंपर मेरा नाम छपता है, 'कल्याण' में नाम छपता है, संस्थाओंके साथ नाम जुड़ा रहता है—इन सबमें मेरे मनमें यश प्राप्त करनेकी कामना न हो—यह कौन कह सकता है? आप नहीं मानते—यह आपकी गुणदृष्टि है। वस्तुतः अन्तर्यामी भगवान् ही सब जानते हैं। मैं तो अपने सामने भी अपनी प्रशंसा सुनता हूँ और उद्विग्न होकर कोई घोर प्रतीकार नहीं करता—यह भी कमजोरी ही है। पर यह सब होते हुए भी आप तो बहुत ऊँचा मानते हैं, आपकी इस मान्यताके लिये मैं क्या कहूँ? पर इतना तो मैं भी मानता हूँ कि भगवान्‌की कृपाका बल मेरे साथ है और वह मेरे सारे बाधा-विघ्नोंको निरन्तर हटाता रहता है और मैं अपने लक्ष्यकी ओर सतत अग्रसर हो रहा हूँ। मेरा मार्ग क्या है, कैसे अग्रसर हो रहा हूँ, उसमें क्या-क्या कठिनाइयाँ और सुविधाएँ हैं—ये सब चीजें बतानेकी नहीं होतीं। आपने कृपापूर्वक पत्र लिखे और समयपर मेरा उत्तर न जानेसे भी आप अप्रसन्न नहीं हुए—यह आपकी कृपा है। मैं बहुत ही कम पत्र लिख-लिखा पाता हूँ। आपके लंबे-लंबे पत्रोंका भी यह बड़ा ही संक्षिप्त उत्तर है। मेरा विनीत अनुरोध है कि आप इसीमें संतोष कर लें। शेष भगवत्कृपा।

(३)

भगवान्‌की वस्तु सदा भगवान्‌की सेवामें लगाते रहिये

प्रिय महोदय, सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। इस समय तो विहार, उत्तरप्रदेश तथा राजस्थानके कुछ भागोंमें भयानक अकाल है; पर अकाल न होनेकी स्थितिमें भी भारतवर्षमें इतने गरीब हैं, जिनको रोज भरपेट भोजन नहीं मिलता, तन ढकनेको कपड़ा नहीं मिलता। दूध, चिकित्सा, आरामका घर आदि तो बहुत दूरकी बातें हैं। फिर आजकल भयंकर महँगीने तो मानो प्राणियोंपर राक्षसी धावा ही बोल दिया है। इस अवस्थामें जिनके पास जो कुछ भी साधन है, उसके द्वारा इन अभावग्रस्त प्राणियोंकी—

अपने ही जैसे प्राण-मनवाले मानवोंकी सेवा करनी चाहिये। यह धर्म है और इसकी उपेक्षा बहुत बड़ा पाप है।

सच तो यह है कि यहाँ कुछ भी किसीका नहीं है, सभी भगवान्‌का है और उसे यथासाध्य आवश्यकतानुसार प्राणिमात्रकी सेवाके द्वारा भगवान्‌की सेवामें लगाना है। वस्तुतः सभी प्राणी भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति हैं। अतएव इनकी सेवामें किसी वस्तुका अर्पण करना भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌की सेवामें लगाना मात्र है। यह ईमानदारी है, कोई महत्त्वकी बात नहीं। श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदजीके वाक्य हैं—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥
(७। १४। ८)

अर्थात् जितनेसे अपना पेट भरे, उतनेपर ही मानवोंका अधिकार है। जो इससे अधिकपर अपना अधिकार मानता है, वह चोर है; उसे दण्ड मिलना चाहिये।

देवर्षि नारदजीके इन शब्दोंपर ध्यान दीजिये। हमारा कुछ है ही नहीं। उदर-पोषण भरकी वस्तु स्वामीने हमें दी है। इससे अधिकको अपनी वस्तु मानना तो बेईमानी—चोरी है। हमें यदि भगवान्‌ने कोई वस्तु दी है तो वह इसी प्रकार दी है कि जैसे भला मालिक किसी सेवकको उसे ईमानदार मानकर अपनी वस्तु सँभालके तथा आवश्यकतानुसार अपनी सेवामें लगानेके लिये देता है, न कि उसे व्यर्थ खोने या अपनी मानकर यथेच्छ भोगनेके लिये। अतएव जहाँ-जहाँ जिस-जिस वस्तुका अभाव है, वहाँ-वहाँ भगवान् मानो अपनी उस-उस वस्तुको माँगते हैं और जिस-जिसके पास जो-जो वस्तु है, वहाँ-वहाँपर प्रसन्न चित्तसे देनी चाहिये।

जहाँ अन्नका अभाव है वहाँ भगवान् अन्न माँगते हैं; जहाँ जलका अभाव है, वहाँ जलकी इच्छा करते हैं; जहाँ वस्त्रका अभाव है, वहाँ वस्त्र चाहते हैं; जहाँ रोगीकी चिकित्सा या सेवाका अभाव है, वहाँ वे चिकित्सा और सेवाकी माँग करते हैं और जहाँ रहनेको स्थान नहीं है, वहाँ भगवान् स्थान चाहते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुएँ भी। अतएव जिस-जिसके पास जो-जो वस्तु है, उस-उसको वह वस्तु जहाँ भगवान् उसे चाहते हैं—अवश्य देनी चाहिये।

जो लोग भगवान्‌की वस्तु समुचितरूपसे तथा नेकनीयतीसे भगवान्‌की सेवामें न लगाकर स्वयं भोगते हैं, वे भगवान्‌के साथ बेईमानी तथा धोखेबाजी करते हैं। इसके परिणाममें वे दण्डके भागी होंगे ही। आज चाहे वे इस बातको न मानें, न परवा करें। जहाँ लाखों-करोड़ों अपने-ही-जैसे बहिन-भाइयोंको भरपेट रूखा-सूखा अन्न भी नहीं मिलता, वहाँ कुछ लोगोंको बढ़िया-बढ़िया मेवा-मिठाई आदि खाने, व्यर्थ खोने या अपने ही लिये सुरक्षित अन्नादि जमा रखनेका क्या अधिकार है? जहाँ लाखों-करोड़ों बहनें तन ढकनेके लिये एक मोटी साड़ी भी नहीं पातीं, वहाँ कुछ बहिनोंका पाँच-पाँच सौ, हजार-हजारकी एक-एक साड़ी पहनना पाप नहीं तो और क्या है? जहाँ लाखों-करोड़ों भाइयोंको धोतीके सिवा और कोई कपड़ा नहीं मिलता, वहाँ कुछ भाइयोंको बढ़िया कपड़े, सैकड़ों रुपये सिलाई देकर सूट बनवाने-पहननेका और पेटियोंमें संग्रह कर रखनेका कार्य वस्तुतः असत्कार्य या घोर पाप ही तो है। अतएव मेरी प्रार्थना तो सबसे यही है कि अपने जीवनको सादा बनायें; फैशन, विलासिता तथा फिजूलखर्चीका त्याग करें। अनावश्यक आवश्यकताओंको न बढ़ायें, थोड़ेमें ही अपना काम चलायें तथा शेष सबको भगवान्‌की वस्तु मानकर भगवान्‌की सेवामें लगाते रहें। संग्रह तो रखना ही नहीं चाहिये। अधिक वस्त्रोंका—वस्तुओंका संग्रह होगा और मरते समय यदि उनमें

मन रह जायगा तो उन्हीं वस्तुओंमें कोई कीड़ा बनकर रहना पड़ेगा। बहुत कीमती कपड़े नहीं पहनने चाहिये। जो भाई हजार-पाँच सौका एक सूट पहनते हैं, वे सौ-पचासका पहनें और बचे हुए नौ-सौ या साढ़े चार सौमें नब्बे या पैंतालीस दस-दस रुपयेकी धोतियाँ खरीदकर उन लोगोंको दे दें, जिनके पास धोती नहीं है और जो उसको जुटानेमें असमर्थ हैं। इसी प्रकार एक हजारकी साड़ी पहननेवाली बहिन पचासकी साड़ी पहन लें और शेष नौ सौकी नब्बे साड़ियाँ खरीदकर उन बहिनोंके तन ढक दें, जिनके पास साड़ीका अभाव है। इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुएँ भी।

वर्तमानमें अकालके समय तो ऐसा करना विशेष कर्तव्य है। वैसे जीवनमें सदा ही ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये। और जिनके पास बहुत अधिक साधन हैं और जो बहुत कमाते हैं, उन्हें तो अपने सभी साधनोंको अभिमानरहित होकर भगवान्‌की सेवामें लगाते रहना चाहिये। यह याद रखना चाहिये कि भगवान् अपनी वस्तु अपनी सेवामें स्वीकार कर रहे हैं—यह उनकी कृपा है। इसमें न तो अभिमानकी बात है न किसी प्रकारसे किसीपर अहसान करनेकी। अपनेको उपकार करनेवाला दयालु दाता और लेनेवालोंको उपकारके पात्र, दीन, भिक्षुक न मानकर यही मानना चाहिये कि 'भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌के इच्छानुसार भगवान्‌की सेवामें लगी है। भगवान्‌ने ही उसे ग्रहण किया, मेरा इसमें क्या है। मुझसे भगवान्‌ने इस कार्यमें सेवा ली, यह भगवान्‌की कृपा और मेरा सौभाग्य है।'

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

एक उदार दाता भक्त सदा संकोचसे भरे दान देते समय भी नेत्रोंको झुकाये रखते थे। किसीके पूछनेपर उन्होंने नीचे नेत्र रखनेका कारण बताया—

> देनहार कोउ और है देत रहत दिन-रैन।
> लोग भरम हम पै धरैं, या सो नीचे नैन॥

शेष भगवत्कृपा।

(४)

प्रातःस्मरणीय महात्माओंकी जूठन

प्रिय महोदय,

सादर प्रणाम। आपका कृपापत्र मिला। आपका लिखना सर्वथा सत्य है। मैंने भक्ति-प्रेम आदिके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है—कहा है, उसमें अधिकांशमें श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके प्रातःस्मरणीय नित्य-वन्दनीय महात्माओंकी अनुभूत वाणी ही प्रधान रूपसे आधार है। यद्यपि श्रीराधामाधवकी मुझपर अनन्त कृपा है, निरन्तर कृपा बरस रही है—इससे मुझ तुच्छ तथा नगण्य जीवको भी बड़े-बड़े महानुभावोंके चरणानुगत होकर किसी अंशमें स्वयं भी कुछ प्राप्त करनेका सौभाग्य मिला है और वह अनुभूति उत्तरोत्तर बढ़ रही है, तथापि यह तो सर्वथा सत्य ही है कि मेरे भाषण और लेख उन प्रातःस्मरणीय महात्माओंका ही महाप्रसाद या पवित्र जूँठन है। अलग-अलग किन-किनके नाम बताऊँ—मैंने बहुतोंसे बड़ा लाभ उठाया है और अब भी उठा रहा हूँ। उन सभीका बहुत बड़ा ऋणी हूँ; पर साथ ही उनका इतना कृपापात्र हूँ कि वे मुझे निरन्तर अपना एक तुच्छ जन समझकर देते ही रहते हैं—ऋणरूपमें नहीं, वात्सल्य-स्नेहके रूपमें। यह उनकी सहज ही महान् उदारता है।

शेष भगवत्कृपा।

(५)

सभी क्षेत्रोंमें आदर्श पुरुष हैं

प्रिय महोदय,

सादर हरिस्मरण! आपका कृपापत्र मिला। अवश्य ही वर्तमान समयमें भी ऐसे बहुत-से सज्जन सभी क्षेत्रोंमें वर्तमान हैं, जो भारतीय संस्कृतिके परमोज्ज्वल प्रकाशरूप हैं। पर ऐसे सज्जन न तो अपना विज्ञापन करते हैं, न वे यह चाहते ही हैं कि उन्हें लोग जानें-मानें। करोड़ों मानवोंमें, पता नहीं, कितने ऐसे होंगे, जिनके चरित्र अत्यन्त पवित्र और आदर्श हैं। जिन क्षेत्रोंके लोगोंके सम्बन्धमें आपने पूछा, उ

क्षेत्रोंमें भी ऐसे बहुत-से सज्जनोंसे मेरा काम पड़ा है और मैं उन्हें जानता हूँ, जो परम आदर्शचरित्र हैं।

साधुओंमें मैं ऐसे महात्माओंको जानता हूँ, जो सचमुच बड़े विरक्त और परम त्यागी, सदाचारी हैं। उनमें कौन ब्रह्मनिष्ठ हैं—परमात्माको प्राप्त हैं, यह तो मैं नहीं कह सकता; क्योंकि यह स्थिति तो स्वसंवेद्य है। एक महात्माको मैंने देखा है, जो बहुत बड़े दार्शनिक विद्वान् हैं, पर जिनमें विद्याका जरा भी अभिमान नहीं और जिनका अत्यन्त त्यागपूर्ण, विरक्त जीवन है।

धनियोंमें भी ऐसे बहुत-से हैं। एक ऐसे सज्जन हैं, जो अपने लिये कंजूस हैं और दूसरोंके लिये बड़े उदार हैं। सदाचारी हैं, व्यसनरहित तथा अभिमान-शून्य हैं। अत्यन्त साधारण रहन-सहन रखते हैं। विनम्र हैं, भगवद्भक्त हैं। एक दूसरे धनी सदाचारी महापुरुष हैं, जिन्होंने पैसा कमाया ही धर्म तथा जनताकी सेवाके लिये। उम्रभर सेवा करते रहे।

एक डिप्टी कलक्टर हैं, जो अनुचित अर्थ ग्रहण नहीं करते, अपने नियमित नौकरीके पैसोंसे परिवार-पालन करते हैं। एक दिन मैंने पूछा,—उस दिन महीनेके अन्तकी ३० तारीख थी। उन्होंने कहा—मेरे पास आज चार आने पैसे हैं। इस महीनेके वेतनके पैसे मिलेंगे तो काम चलेगा।' एक पोशाक है, जिसे बाहर जाते हैं तब पहन लेते हैं, बड़े मितव्ययी हैं और अपनी इस स्थितिमें संतुष्ट हैं।

एक टेक्सटाइल विभागके उच्च अधिकारी थे, अब उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया है। बड़े-बड़े प्रलोभन आनेपर भी उन्होंने ऊपरका एक पैसा नहीं लिया, बड़ी सादगीसे जीवन बिताया। साइकलसे आफिस जाते-आते थे। आफिससे ऊपर-नीचेके अधिकारी उनसे उतने प्रसन्न नहीं रहते थे; क्योंकि वे उनको अपनी अनुचित आयमें बाधक समझते थे। बड़े निर्मल-हृदय, विनम्र, सदाचारी तथा भक्त पुरुष हैं।

एक पुलिसके उच्च अधिकारी थे, जिन्होंने सारी उम्रमें कभी घूस नहीं ली, कभी मिथ्या मुकदमा नहीं बनाया। कमाईमेंसे गरीबोंकी सेवा करते और स्वयं बड़ी कठिनाईसे जीवन चलाते रहे। पर बड़े प्रसन्न थे। उन्हें अपनी सादगी तथा ईमानदारीका गौरव था।

एक नेता हैं, जो पहले कहीं किसी पंचायतके उच्च अधिकारी थे। अच्छे कुलके, ईमानदार, अपनी धुनके पक्के, जनताकी सेवा तथा जनताके सुख पहुँचानेके लिये अथक परिश्रम करनेवाले, देश तथा जनताकी सेवामें अपना सारा समय, शक्ति, धन लगानेवाले, कुटुम्बसे लापरवाह, सेवाकी धुनमें घरकी जमीन-मकान-जायदाद बेचकर काम चलानेवाले, पर मित्रों-बान्धवोंके द्वारा दिये जानेपर भी किसी भी हालतमें पैसा स्वीकार न करनेवाले फक्कड़ आदमी हैं। मैं उनकी कुटुम्बके प्रति लापरवाही तथा जमीन-जायदाद बेचनेके कार्योंका समर्थन नहीं करता, पर उनकी धुन देखकर तो सभी चकित हो जाते हैं। अभी-अभी उन्हें कई लाख रुपये किसी वोटके सौदेमें मिल रहे थे, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया और नयी सरकार बननेतक दबाव पड़नेके डरसे एकान्त-सेवन करते रहे। संग्रह करने योग्य मनुष्य हैं।

मिनिस्टरोंमें भी ऐसे बहुत-से हो चुके हैं, अब भी होंगे, जिन्होंने ऊँचे-से-ऊँचे पदोंपर आसीन होकर भी अपने घरकी ओर नहीं देखा, फकीर ही बने रहे। नया मकान बनाना तो दूर रहा, पुराने घरकी मरम्मत भी नहीं करवायी। भाड़ेका घर भी नहीं बदला।

इसी प्रकार सभी क्षेत्रोंमें परम पवित्र आचरणोंवाले सज्जन हैं। स्त्री-समाजमें तो पुरुषोंसे कहीं अधिक आदर्श चरित्रवाली त्यागमूर्ति देवियाँ हैं। इन सभीके चरणोंमें मैं सभक्ति नमस्कार करता हूँ।

दुःख तो इस बातका है कि नवीन निर्माणमें ऐसे पुरुषों तथा स्त्रियोंकी संख्या उत्तरोत्तर घट रही है, जो देशके लिये भयानक दुर्भाग्यकी बात है।

शेष भगवत्कृपा—

गोरक्षा-आन्दोलन

एक वर्षतक बहुत प्रयत्न करनेपर भी सम्पूर्ण गोहत्या-बंदीका कानून नहीं बन पाया। न सरकारसे कोई आश्वासन ही मिला। आशा हो चली थी कि सरकार सम्पूर्ण गोवध-बंदीकी घोषणा कर देगी; पर वह आशा सफल नहीं हुई। सम्भव है हमारे मानस तथा आचरणमें कोई ऐसा दोष रहा हो, जिसके कारण उच्च अधिकारियोंका मन नहीं बदला। गोवध-बंदीके लिये जो असंख्य लोगोंने प्रयत्न किया, त्याग किया, देवाराधन किया, वह सब पुण्य तो है ही। और मनुष्यको इतना ही वास्तवमें करना है कि भगवान् जैसी बुद्धि दें, उसके अनुसार सबका मङ्गल चाहते हुए भगवान्‌के आश्रयसे कर्तव्य-सम्पादनमें लग जाय, उसमें प्रमाद न करे। कर्तव्य-कर्म पूर्णरूपसे सम्पन्न होगा या नहीं अथवा कर्म सम्पन्न होनेपर भी उसका फल अनुकूल होगा या प्रतिकूल—यह मङ्गलमय भगवान्‌पर छोड़ दे।

पर कर्मकी दृष्टिसे, जो कुछ किया गया है, उसके फलस्वरूप कानूनके द्वारा सम्पूर्ण देशमें गोहत्या सर्वथा बंद होनी ही चाहिये; पर प्रयत्नमें शिथिलता नहीं आनी चाहिये। खेदका विषय है कि इधर प्रयत्नमें काफी ढिलाई आ गयी। सत्याग्रह निश्चय ही अभी जारी है और वह जारी रहना चाहिये तथा उसमें शान्तिपूर्ण तीव्रता आनी चाहिये। सत्याग्रहियोंकी संख्या बढ़नी चाहिये। स्थान-स्थानपर आन्दोलन चलना चाहिये। साथ ही देवाराधन, भगवदाराधन भी सतत चालू रहना चाहिये। मेरी प्रार्थना है कि देशभरमें एक बार फिरसे गोरक्षाके लिये देवाराधन तथा ईश्वराराधन आरम्भ हो जाय। ऐसा अनुमान किया जाता है कि वर्तमान केन्द्र-सरकारके अधिकारियोंका रुख इस समय कुछ अनुकूल है। सरकार समिति बनाने जा रही है। विधेयक भी पेश है। यदि इस समय देशमें जोरका आन्दोलन हो तो उसका सरकारपर काफी प्रभाव पड़ सकता है।

ऐसा ज्ञात हुआ है कि शीघ्र ही साधु-महात्मा लोग जोरोंसे सत्याग्रह शुरू करनेवाले हैं। और लोग भी सचेष्ट हैं। सबको उन्हें उत्साहित करना चाहिये तथा क्रियात्मक सहयोग भी देना चाहिये। गोमाताके सारे वंशकी रक्षा होनी चाहिये—उपयोगी और अनुपयोगीके पापमय प्रश्नको छोड़कर।

पर कानूनन गोहत्या-बंदीके साथ ही निम्नलिखित कार्य भी साथ-ही-साथ करनेकी बड़ी आवश्यकता है और उनमें सरकारोंका सहयोग भी परमावश्यक है—

(१) गायोंकी नस्ल-सुधारका काम हो, अच्छे सुपुष्ट बैल तैयार किये जायँ तथा बहुत अधिक दूध देनेवाली गायोंसे ही सबल साँड़ोंका सम्पर्क विशेषरूपसे कराया जाय। अनुपयोगी गौओंके तथा निर्बल रोगी साँड़ोंके द्वारा गोवंशकी वृद्धि न करायी जाय।

(२) अच्छे साँड़ काफी संख्यामें तैयार कराये जायँ।

(३) अपाहिज पशुओंके लिये सुव्यवस्थित गोसदन खोले जायँ और उनमें उन पशुओंके जीवन-निर्वाहके लिये चारे-पानीकी व्यवस्था हो।

(४) अधिक-से-अधिक चारा बोकर चारा पैदा किया जाय। प्राकृतिक घासके ऊपर निर्वाह होना कठिन है। भारतमें करोड़ों एकड़ भूमि ऐसी बनायी जाती है, जिसमें सिंचाईका साधन या वर्षा होनेपर सफल खेती हो सकती है।

(५) स्थान-स्थानमें गोचरभूमि छोड़ी जाय।

(६) गायोंके खाने-पीनेकी चीजोंका निर्यात किसी रूपमें भी न हो, इसकी व्यवस्था की जाय।

(७) जबतक सर्वत्र गोवध-बंदीका कानून न बन जाय, तबतक गायोंका निर्यात कम-से-कम उन प्रदेशोंमें न हो, जहाँ पशु-हत्या निर्बाध होती है।

(८) कसाइयोंके हाथोंमें गाय कतई न जाय, इसकी सुदृढ़ व्यवस्था हो।

(९) जहाँतक सम्भव हो, प्रत्येक गृहस्थ एक-एक गाय पालन करनेका व्रत ले।

(१०) नगरपालिकाओंने जहाँ घरोंमें गायें रखनेपर रोक लगा रक्खी है, वहाँ गंदगी न फैले—इसकी व्यवस्था करके सबको गाय रखनेकी अवश्य छूट दे।

(११) प्रतिदिन सम्पूर्ण गोरक्षाके लिये भगवान्से प्रार्थना की जाय।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

जनतन्त्रकी रक्षा कैसे हो ?

देशमें चुनाव समाप्त हो गये। सभी जगह नयी सरकारें बन गयीं—कहीं कांग्रेसकी, कहीं विविध दलोंकी मिली-जुली; पर अभीतक कहीं भी शान्तिके साथ केवल देश-कल्याणकी भावनासे सरकारें काम नहीं कर पा रही हैं। इसका कारण है—पद-लोलुपता, अभिमान, आपसकी फूट, एक-दूसरेको अपदस्थ करनेकी इच्छा और क्रिया, परस्परमें कटु आलोचना और एक दूसरेपर मिथ्या अथवा बढ़ाया हुआ दोषारोपण। इस अवस्थामें स्वाभाविक ही देश तथा देश-हित सामने नहीं रहता—रहता है व्यक्तित्व, रहता है अहं और रह जाता है दलगत या अधिकांशतः व्यक्तिगत स्व-अर्थ। यह निश्चित है कि 'स्व' जितना सीमित होता है, उतना ही गंदा होता है और जितना विस्तृत तथा व्यापक होता है, उतना पवित्र। 'स्व' जहाँ देशसे निकलकर दलमें या व्यक्तिमें आ जाता है, वहाँ देशका हित विस्मृत या अत्यन्त गौण हो जाता है और दलका या व्यक्तिका स्वार्थ मुख्य बन जाता है। यही आज प्रायः हो रहा है।

कांग्रेस हो या अन्य कोई भी दल, हम हैं तो सब भारतीय ही। हमारा सभीका लक्ष्य होना चाहिये—'भारतका कल्याण' (और भारतके कल्याणद्वारा विश्वका कल्याण)। पर जबतक हमारे चरित्रमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, भोग-लिप्साका और अर्थका त्याग, सादगी, मितव्ययिता, संयम, परमत-सहिष्णुता, अधिकार-मदका अभाव, अभाव-ग्रस्त दुखी जनताके दुःखोंको अपना दुःख माननेकी वृत्ति, समन्वयात्मक सहयोगकी भावना तथा ईश्वरका भय नहीं आता, तबतक कांग्रेसकी या किसी भी दलकी सरकारें हों और वे एक दूसरेपर चाहे जितना दोषारोपण करती रहें, उनसे देशका कल्याण नहीं होगा।

जैसे चुनावके समय स्वतन्त्र तथा स्वस्थ निष्पक्ष चुनाव नहीं हुआ और जनतन्त्रके नामपर ऐसी-ऐसी बातें हुईं, जो जनतन्त्रके सिद्धान्तका ही नाश करनेवाली थीं। साम, दाम, दण्ड और भेद—चारों ही उपायोंसे काम लिया गया। वैसा ही—सरकारोंके निर्माणके समय भी हुआ। एक-एक वोटके लिये लाख-लाख रुपयोंका प्रलोभन दिया गया, भय दिखाया गया, अपने दलकी मिथ्या प्रशंसा तथा प्रतिपक्षी दलकी अनर्गल मिथ्या निन्दा की गयी, भेद-नीतिसे बरगलाया गया, आपसमें फूट पैदा की गयी और आगे बैर लेनेकी धमकियाँ दी गयीं आदि। और वस्तुतः इन नीतियोंपर बनी सरकारोंका सहज ही वास्तविक देश-हितके काममें लग जाना बहुत

ही कठिन है; क्योंकि सरकारमें जिन्होंने विभिन्न पद प्राप्त किये हैं, प्रायः सभीका चित्त अभी अशान्त है। वे निश्चिन्त तथा शान्तमनसे देशके हितकी बात सोचें कैसे ? यह किसी दल या व्यक्ति-विशेषकी बात नहीं है। दल तथा व्यक्ति—सब हम ही तो हैं। पराया है कौन ? सीमित स्वार्थने हमारी बुद्धिको तमसाच्छन्न कर दिया है और इसीसे हम अच्छी नीयत होनेपर भी तथा बुराई करनेकी इच्छा न होनेपर भी—'अनिच्छन्नपि', 'बलादिव' भलाईका त्याग और बुराईका ग्रहण कर रहे हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। ऐसी परस्पर-विरोधी सरकारें बननेके बदले सबकी मिली-जुली राष्ट्रीय सरकारें बनतीं तथा महात्मा गांधीके आदर्शको सामने रखकर रचनात्मक कार्यक्रम सामने रखतीं तो बड़ा कल्याण होता। अभी तो हमारी सारी शक्ति, साधन, विचार, क्रिया परस्परके गिरानेमें खर्च हो रही हैं। इसका कारण यही है कि हमारा जीवन-स्तर ही नीचा हो गया है। यह सभा-मञ्चके व्याख्यानों तथा वक्तव्योंसे नहीं उठ सकता। न कोई कानून ही हममें सुधार कर सकता है। यही कारण है कि अंग्रेजोंके जानेके बादसे घूसखोरी, विलासिता, चरित्रहीनता, वैर-विरोध, हिंसा-प्रतिहिंसा आदि दोष हमारे अंदर बढ़े हैं। यह राष्ट्रव्यापी रोग बातोंसे दूर नहीं होगा। इसके लिये चरित्रशुद्धि तथा चरित्रकी उच्चताकी परमावश्यकता है, जिसका आधार हमारी शिक्षा है। अतएव शिक्षा-पद्धतिमें शीघ्र-से-शीघ्र आमूल परिवर्तन करना होगा। जबतक धर्मशिक्षा नहीं होगी, तबतक सुधारकी आशा बहुत ही कम है।

वर्तमानमें तो सबसे पहले यह काम होना चाहिये कि दलोंकी भावनाको भूलकर सभी सरकारें परस्परमें सहयोग, प्रेम तथा समन्वयात्मक नीतिसे शासन करें। परस्परमें प्रेम तथा आदरका व्यवहार करें। सरकारके उच्च अधिकारी खण्डन-मण्डन छोड़कर केवल देश-हितकी पवित्र दृष्टिसे ही सब बातें सोचें तथा करें। एक प्रदेश दूसरे प्रदेशके अभावको पूर्ण करे तथा एक ही शरीरके विभिन्न अङ्गोंकी भाँति सब सबकी पुष्टि तथा सबके स्वास्थ्य-साधनमें लगे रहें। स्वयं अपने उज्ज्वल तथा पवित्र चरित्रसे सभी विभागोंके सरकारी कर्मचारियोंके तथा जनताके चरित्रको उज्ज्वल तथा पवित्र बनायें और भगवान्‌से प्रार्थना करें कि वे किसीका भी विनाश न करके, सबको सद्‌बुद्धि प्रदान कर, सबको सबका हितैषी तथा सबका कल्याण साधन करनेवाला बनायें। भगवान् सबका मङ्गल करें।

प्रभु-पद-प्रीतिकी प्रेरणा

मन करि ले साहिब से प्रीत।
सरन आये सो सब ही उबरे, ऐसी उन की रीत॥
सुंदर देह देखि मत भूलो, जैसे तृन पर सीत।
काँची देह गिरै आखिर को, ज्यों बारू की भीत॥
ऐसो जन्म बहुरि नहिं पैहौ, जात उमिरि सब बीत।
दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपर, देव नगारा जीत॥

—संत कबीरदास

पढ़ो, समझो और करो

(१)

विनयके अवतार लालाबाबू

विनय विद्वान् एवं गुणी पुरुषोंका भूषण है। जो व्यक्ति धनी, विद्वान् और वीर होनेपर भी विनयी है, वह महान् है। एक श्लोक है—

नभोभूषा पूषा कमलवनभूषा मधुकरो
वचोभूषा सत्यं वरविभवभूषा वितरणम्।
मनोभूषा मैत्री विमलकुलभूषा सुचरितं
सदोभूषा सूक्तिः सकलगुणभूषा च विनयः॥

बंगालमें ऐसे ही विनयके अवतार श्रीलालाबाबू थे। वे सात्त्विक, वैराग्यवान्, विनयी और सरल-चित्त पुरुष थे। उनकी दानशीलताकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध—सभीके मुखसे लालाबाबूकी प्रशंसा ही सुनी जाती थी।

लालाबाबू अपने अतुल ऐश्वर्यको त्यागकर एक साधारण अवस्थाके सामान्य व्यक्तिकी तरह शुद्ध मनसे परमार्थकी चिन्तामें लग गये। वे अकालग्रस्त, दीन-दुखियोंको बड़ी उदारतासे तथा विनम्रतासे अन्न-वस्त्रका दान किया करते थे।

उन्होंने वृन्दावनमें एक सदाव्रत स्थापित किया था। जो भी भूखे वहाँ जाते, सबको मुफ्त भोजन मिलता था।

लालाबाबूने वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णका विशाल मन्दिर भी बनवाया था।

सारी बंग-भूमिमें घर-घर लालाबाबूके पुनीत कार्योंकी प्रशंसा होने लगी; किंतु विनयी लालाबाबूके कानोंमें अपनी प्रशंसाकी चर्चा खटकने लगी। जिस महापुरुषने अहंकारको पैरोंतले दबाकर विनय एवं दैन्यको मस्तिष्कका मुकुट बनाया और सारी धन-सम्पत्तिको परोपकार-व्रतमें लगा दिया, वह अपनी प्रशंसा कैसे सुन सकता था।

वे तो अपनी निन्दा करनेवाले मनुष्योंसे प्रेम करते थे। जब उनकी प्रशंसा चारों ओर होने लगी, तब वे बंग भूमि त्यागकर वृन्दावन चले आये।

श्रीकृष्णरायजीके मन्दिरमें ही निवासकर वे भजन-चिन्तनमें लीन रहने लगे।

पर अबतक उन्होंने दीक्षा ग्रहण नहीं की थी। उन दिनों भक्तिमार्गके एक संत बाबा कृष्णदासजी वृन्दावनमें ही निवास करते थे। कृष्णदासजीने 'भक्तमाल' ग्रन्थका बँगलामें अनुवाद किया था। लालाबाबूने इन्हीं वैराग्यवान् भक्त एवं विद्वान् महात्मासे दीक्षा लेनेका निश्चय किया।

बाबा पहले ही लालाबाबूके आदर्श गुणोंसे परिचित थे। वे हृदयसे लालाबाबूसे स्नेह करते थे। जब लालाबाबू दीक्षा लेनेके लिये बाबाजीके पास पहुँचे, तब बाबाजी बोले—'तुम्हें मन्त्र देनेमें अभी देर है, कुछ समय और ठहरो। तुम्हारे विनयकी अभी और परीक्षा होगी।'

लालाबाबू बाबाजीकी बात सुनकर विस्मय और विषादमें डूब गये। उनके स्थानपर कोई अभिमानी पुरुष होते तो वे ऐसे अवसरपर दूसरे गुरुकी तलाशमें लगते! पर लालाबाबूका तो इन्हीं बाबाजीसे दीक्षा लेनेका निश्चय था। उन्होंने सोचकर देखा कि सचमुच उनके जीवनमें अभीतक विनयका पूर्णरूपसे अवतरण नहीं हुआ है। वे विचार करने लगे—

'मैं यद्यपि ठाकुरद्वारेमें एक मुट्ठी भगवान्‌का प्रसाद पाकर आठों पहर उनका नाम जपा करता हूँ, फिर भी मेरे मनसे वैमनस्य, भेदभाव आदि अभी दूर नहीं हुए हैं। मैं सेठजीके सदाव्रतकी तरफ भिक्षा लेने कहाँ गया हूँ। मेरे मनमें अब भी उनके प्रति घृणा एवं ईर्ष्याके भाव हैं। मेरा अन्तःकरण पूर्णरूपसे पवित्र नहीं हुआ है। शत्रु-मित्र, मान-अपमान आदि भेदभावके रहते अहंकार पूरी तरहसे नष्ट नहीं हो सकता।'

बात यह थी कि जयपुरके एक धनवान् सेठ भी भगवान्‌के भक्त थे। उन्होंने भी वृन्दावनमें भगवान् मुरली-मनोहरका एक रमणीय मन्दिर बनवाया था और एक सदाव्रत भी साधु-संतोंके लिये खोल रक्खा था।

मथुराके आस-पास इनकी काफी जमीन थी। इसी इलाकेमें लालाबाबूकी भी जमीन थी, जिसकी वार्षिक आय एक लाख रुपयेके लगभग थी। इसी जमीनके सम्बन्धमें दोनों (सेठ और लालाबाबू) में कई दिनोंसे विवाद चल रहा था। झगड़ेके कारण बोल-चाल भी बंद थी।

लालाबाबू सब जगह भिक्षा माँगने जाते थे किंतु सेठजीके ठाकुरद्वारेकी तरफ उनके पैर नहीं उठते थे। अब इस वैमनस्यका उन्हें अन्त करना था। स्थितप्रज्ञ संत पुरुषके लिये, सच्चे भक्तके लिये अब कौन-सी शत्रुता, ईर्ष्या और कलह। उन्होंने सेठजीके सदाव्रतकी ओर जानेका

निश्चय कर लिया और एक दिन वे सेठजीके सदाव्रतपर पहुँच ही गये।

बंगालके धनी पुरुषको सेठजीके सदाव्रतपर भिक्षुकके वेषमें देखकर मन्दिरके सब कर्मचारी, पुजारी आदि आश्चर्य करने लगे। वे लालाबाबूको भिक्षा देनेमें भी संकोच करने लगे; क्योंकि मन्दिरके मालिकके नाराज होनेका भी उन्हें भय था। दैवयोगसे उस समय सेठजी वहाँ उपस्थित थे। जब सेवकके द्वारा उन्होंने सुना कि लालाबाबू भिक्षा माँगने आये हैं, तब वे नंगे पैरों ही दौड़कर लालाबाबूके पास पहुँचे। लालाबाबूका साधारण वेष और अतुल वैराग्य देख सेठजीका शत्रुभाव सहसा सर्वथा लुप्त हो गया। वे लालाबाबूके पैरोंपर गिर पड़े। लालाबाबूने सेठजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया। आज दोनोंके बीच मनोमालिन्य नष्ट हो गया। दोनोंके हृदय पवित्र हो गये। अब शत्रुताकी जगह मित्रताने ले ली। भिक्षा लेकर ज्यों ही लालाबाबू बाहर आये तो देखा कि बाबा कृष्णदास खड़े हैं।

लालाबाबू बाबाजीके चरणोंमें गिर पड़े। बाबाजीने बड़े यत्नसे उन्हें उठाकर गले लगाया और कहा—'लालाजी! आज तुम्हें दीक्षा दी जायगी। तुम आज परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये।'

लालाबाबूके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगे!

गुरु-शिष्यका यह मिलन अद्भुत था। ऐसे थे विनयके अवतार लालाबाबू।

(लेखक—प्रा० श्याममनोहर व्यास एम्० एस्-सी०)

(२)

अनजानमें अपराधका दुष्परिणाम और आराधनासे शुभफलकी प्राप्ति

यह उस समयकी एक बिल्कुल सत्य घटना है, जब कि कलकत्तेमें यूरोपियन प्रतिष्ठानोंकी तूती बोलती थी। एक बहुत बड़ी जहाजी कम्पनी थी, जिसके विशाल जहाज सुदूर पूर्व एवं अन्यान्य विदेशोंमें माल लाने, ले जानेका कार्य करते थे। आज भी यह प्रतिष्ठान यहाँ कायम है।

हाँ, तो उन दिनों इस कम्पनीके सबसे बड़े साहब—प्रधान डाइरेक्टर एक अंग्रेज सज्जन थे, जो कुछ ही समय पहले बिलायतसे आये थे। उनका सुपुत्र उच्च विद्याध्ययन-हेतु अपनी माताके सहित बिलायतमें ही था। ये डाइरेक्टर महोदय अपनी अद्भुत एवं पैनी सूझ-बूझ, गहरी दूरदर्शिता, विलक्षण प्रतिभाके बलपर यहाँ काफी लोकप्रिय हुए और यहाँके लोगोंमें अच्छी तरह घुल-मिल गये।

साहबके विशाल कार्यालयके बिल्कुल पास एक अत्यन्त प्राचीन पीपलका पेड़ था। एक बार जब कि इमारतमें मरम्मतका कार्य चल रहा था, तब उसे अनावश्यक समझकर इन्हीं बड़े साहबके आदेशसे काट दिया गया। किसीने भी साहबको इसके लिये नहीं रोका, अन्यथा वे उसे कभी न कटाते। पेड़के कटकर गिरते समय एक विचित्र चरमराहटकी भयंकर आवाज हुई, जैसे कोई जोरसे देरतक कराह रहा हो। यह मार्मिक ध्वनि बहुत लोगोंको सुनायी पड़ी और लोग घटना-स्थलपर देखनेके लिये एकत्रित हो गये। आकर उन्होंने जो कुछ देखा, उससे वे आश्चर्यसे चकित हो गये एवं किसी भावी आशङ्कासे आतङ्कित हो गये। पेड़मेंसे लाल-लाल रक्तकी-सी निरन्तर धारा बह रही थी। लोग तरह-तरहकी बातें बनाने लगे। कोई कुछ कहने लगा, कोई कुछ। जितने मुँह उतनी बात।

पेड़ कटनेके ठीक सवा महीने बाद साहबके यहाँ अत्यन्त पीड़ा देनेवाली दैवी घटनाएँ घटीं। करोड़ों रुपयोंके मालसे लदे हुए उसके दो जहाज सुदूर देशोंमें अचानक डूब गये। जहाज बिल्कुल नये थे, अतः बीमा कम्पनियोंने भी बिना पूरी जाँच-पड़ताल किये दावोंकी तुरंत अदायगीसे साफ-साफ इन्कार कर दिया, जिससे कम्पनीके व्यावहारिक लेन-देनमें भी एक बड़ी बाधा उत्पन्न हो गयी और एक प्रकारसे आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। फिर भी यह संकट तो कष्टसाध्य था; पर इससे भी एक बड़ा संकट उनके सामने और आ गया। उन्हें समुद्री केबल या फोनके जरिये यह हृदयविदारक खबर मिली कि उनका एकमात्र किशोर पुत्र मरणासन्न अवस्थामें गत दो दिनोंसे लंदन अस्पतालमें पड़ा है। डाक्टरोंने उसकी बीमारीको असाध्य एवं अपनी शक्ति-सामर्थ्यसे बाहर घोषित कर दिया। इस समाचारसे साहबको बड़ी मर्म-वेदना हुई। अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? कम्पनीका प्रधान होनेके नाते वह इस समय कुछ ऐसी विकट परिस्थितियोंमें जकड़ा हुआ था कि उसका थोड़े समयके लिये भी भारतसे बाहर जाना सम्भव नहीं था। भयंकर विपत्तिमें फँस गया। आर्थिक चिन्तासे भी यह काफी भयंकर थी। साहब इस भयानक चिन्तासे अर्धविक्षिप्त-सा हो गया। वह गत दो दिनोंसे अपने बँगलेसे बाहर नहीं निकला। पुत्रकी बीमारी उसे खाये डालती थी। दिनमें

तीन-चार बार विलायतसे समाचार आता—पुत्रकी हालत ज्यों-की-त्यों है।

उसी कम्पनीमें एक बहुत पुराना एवं विश्वासी ईमानदार हिंदुस्तानी वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध हेड जमादार था, जो अपनी वफादारी, कर्तव्यपरायणता एवं अपनी स्पष्टवादिताके लिये प्रसिद्ध था। सारी कम्पनीमें उसकी इज्जत थी। बड़े साहब भी उसे बहुत मानते एवं उसकी इज्जत करते थे। वह दरवान साहबके कुछ मुँहलगा भी था। जो काम कम्पनीके बड़े-बड़े पदाधिकारी साहबसे नहीं करा सकते थे, वह काम व्यवहार एवं नीतिकुशल दरवान चुटकियोंमें साहबसे करा लेता था।

इधर दो दिनोंसे साहबको दफ्तरमें आया न देखकर दरवानको चिन्ता हुई और वह उसी संध्याको उनके घर पहुँचा। साहबका कमरा बंद और बाहर बेहराको देखकर उसका माथा ठनका। बेहरेसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि साहब दो-तीन दिनोंसे न तो कुछ खाता-पीता है और न सोता ही है। पागलकी भाँति एक हाथमें भरी पिस्तौल लिये कमरेमें चक्कर काटता रहता है। यह सुनकर दरवानने घबराकर किसी प्रकार कमरेमें प्रवेश किया। देखा, दुखी साहब सचमुच पागलकी भाँति कमरेके अंदर चक्कर काट रहा है। दरवान-को देखते ही साहबने पुनः दरवाजा बंद कर लिया और दरवान-को देखकर उसकी आँखोंसे अश्रुपात होने लगा; आत्मीयजन-को देखकर आत्मीयता फूट पड़ती है। साहबने भरे कण्ठसे दरवानसे कहा—'एक ही साथ दो भयंकर विपत्तियाँ आ पड़ीं। पर दूसरी तो अत्यन्त भयंकर है। पता नहीं क्या होगा। कुछ सूझता नहीं, क्या करूँ। एकमात्र पुत्र मृत्युके मुखमें पड़ा है, जिसकी चिन्ता मुझे खाये जाती है और ऐसा अभागा हूँ कि इच्छा होते हुए भी इस समय परिस्थिति-वश इंगलिस्तान जा नहीं सकता।'

'प्रभुपर विश्वास रक्खें—सब ठीक हो जायगा। लड़का भी बच जायगा एवं डूबे हुए जहाजोंका भी पता चल जायगा।' दरवानने उन्हें धैर्य बँधाया।

'कैसे धीरज धरूँ—घायलकी गति घायल ही जानता है। मुझे कुछ नहीं सूझता।' साहबने कहा।

'तो एक बात कहूँ ?'—दरवान बोला 'बुरा मत मानियेगा, क्योंकि शायद छोटे मुँह बड़ी बात होगी।'

'निःसंकोच बोलो—तुम्हारी बातोंकी उपेक्षा मैंने कब की है ?' साहबने फरमाया।

'तो साफ-साफ सुन लीजिये, साहब! यह सब हरे पीपलका पेड़ काटनेसे ही हुआ है। हमारे धर्ममें पीपलके पेड़को भगवान्‌का स्वरूप माना गया है। हमलोग तो उसे काटनेकी कल्पना स्वप्नमें भी नहीं कर सकते'—दरवानने कहा।

'लेकिन पेड़ कटवाते समय स्टाफके किसी व्यक्तिने मुझसे ऐसा कुछ नहीं बताया। खैर, उनकी बात छोड़ो। तुमने मुझे पहले यह सब क्यों नहीं बताया, जो अब पीछे बता रहे हो, जब कि मेरा सर्वस्व जा रहा है ? तुम्हारी हर बातकी मैं कद्र करता हूँ, यह तो तुम जानते ही हो।' साहबने गम्भीर स्वरसे कहा।

'आपका कहना सत्य है, साहब! पर मुझे बतानेका अवसर ही कब मिला। कटनेके पूर्व मुझे अन्य बंदूक-धारियोंके होते हुए भी बड़े बाबूने शायद जान-बूझकर खजानेके साथ बैंक भेज दिया। वापस आया तो पेड़ कटा था। मैं लाचार था।' दरवानने उत्तर दिया।

'अब हुआ सो हुआ। यदि इस कष्ट-निवारणका कोई उपाय हो तो बताओ—मुझसे यह महान् अपराध तो हुआ है, पर हुआ है गैरजानकारीसे। किसीने कुछ नहीं बताया। अतः वैसे मैं निरपराध हूँ। निरपराधको तो भगवान् भी क्षमा कर देता है।'

'साहब! हमारे प्रभु बड़े दीनदयालु हैं। उन्हें यदि विश्वासपूर्वक याद किया जाय तो वे अवश्य आपकी प्रार्थना सुनेंगे'—दरवान बोला।

'तो तुम्हीं कुछ करो।' साहब बोला।

'जी नहीं—मैं तो दरवानी करता हूँ। यह मेरा काम नहीं। यह कार्य किसी अच्छे विद्वान् कर्मकाण्डी अधिकारी ब्राह्मण पण्डितका है। मेरी जान-पहचानके एक अच्छे सज्जन हैं। मैं उनसे सारी व्यवस्था समझकर बताऊँगा।' दरवान बोला।

'शुभ काममें देर क्यों—अभी जाओ एवं उन्हें साथ लेकर आओ। मेरी कार ले लो।' साहबने आशाजनक शब्दोंमें कहा।

'तो ठीक है—मैं जाता हूँ; और यदि मिल गये तो उन्हें अभी साथ लेकर आता हूँ। पर यह पिस्तौल आप मुझे दे दीजिये। इस स्थितिमें आपके हाथ इसका रहना ठीक नहीं। इससे अनर्थ भी हो सकता है। प्राणरक्षार्थ होनेकी बजाय यह प्राणघातक भी हो सकता है।' साहबने उसकी

वफादारीपर प्रसन्न हो पिस्तौल उसे सौंप दिया । धन्य है उसकी आत्मीयता, नेकनीयती एवं वफादारीको ।

दरवान सीधे अपनी जान-पहचानके एक कर्मकाण्डी विद्वान् पण्डितके यहाँ पहुँचा, जो शास्त्रीजीके नामसे प्रसिद्ध थे । शास्त्रीजीसे उसने सारी बातें बतायीं और पूछा कि क्या 'इस अनजानी भूल एवं समस्याका किसी प्रकारसे कोई शास्त्रीय हल या रास्ता निकल सकता है, जिससे साहबको सुख-शान्ति मिले ?' शास्त्रीने कई ग्रन्थोंको उँलटने-पलटनेके बाद कहा—'यदि पुनः एक पीपलका छोटा पौधा उसी जगह लगवा दिया जाय और उसका पूजन आदि कराकर वहीं महारुद्र-यज्ञ विधिविधानसहित किया जाय तो दीन-दयालु प्रभु उनका वर्तमान संकट दूर कर सकते हैं । यह मेरा विश्वास है ।'

यह सुनते ही दरवान उन्हें साथ लेकर पुनः साहबके यहाँ पहुँचा और शास्त्रीजीसे साहबकी सारी बातचीत महा-रुद्र-यज्ञ बाबत करा दी । शास्त्रीजीने साहबको हर प्रकारसे ढाढस बँधाया—'आप अब किसी प्रकारकी चिन्ता न करें; क्योंकि हम सब लोग अपनी जानमें उस सर्वोपरि दयालु न्यायकर्ता प्रभुके सामने आपकी अनजानमें हुई भूलको क्षमा करनेकी प्रार्थनामें कोई कसर नहीं रक्खेंगे ।' आप मुझे कलसे ही उसी जगहपर ग्यारह ऋत्विजोंसहित महा-रुद्रयज्ञ करनेकी आज्ञा एवं संकल्प दें । मैं कलसे ही अपने निर्देशनमें वहाँ महारुद्रयागका आयोजन कराता हूँ ।' शास्त्रीजीने कहा ।

'अवश्य-अवश्य पूरी लगन तथा परिश्रमसे प्रयोग शुरू करें । किसी बातकी कमी नहीं रक्खें । बिल्कुल विधिविधान-सहित ही काम होना चाहिये ।' यह कहकर साहबने शास्त्रीजीको विदा किया ।

अब क्या था शास्त्रीजीने ग्यारह चुने-गिने श्रद्धा-सम्पन्न-सदाचारी ऋत्विजोंसहित वहाँ महारुद्रयाग आरम्भ कर दिया, जिससे उस मुहल्ले एवं आस-पासके क्षेत्रोंमें हर्षकी लहर दौड़ गयी । झुंड-के-झुंड लोग दर्शनार्थ आने लगे एवं पहले जो लोग साहबके इस अनजाने कुकृत्यकी निन्दा करते थे, वे सब अब प्रशंसा करने लगे । सबके मुँहसे यही आवाज निकलने लगी कि साहबका संकट अवश्य दूर होगा । साहब भी दिनमें एक बार वहाँ आता और अपने मर्यादित स्थानतक जाकर श्रद्धापूर्वक दर्शन करता, जिससे उसे बड़ा मानसिक बल मिलता । यज्ञारम्भ होनेके कुछ ही पूर्व साहबको जहाँ समाचार मिला था कि पुत्रकी हालत वैसी ही है, वहाँ अब यह समाचार मिला कि—'एक ग्यारह विशिष्ट चिकित्सकोंने विचार-विमर्श करके आखिरी इलाज इंजेक्शन दिया है, जिसके कुछ घंटोंके अंदर होश आ जायगा तो फिर कुछ आगे किया जायगा ।' महान् आश्चर्यकी बात कि जहाँ उसके बचनेकी कोई उम्मीद नहीं थी, वहाँ यज्ञारम्भ होनेके ३६ घंटोंके अंदर ही फिर टेलीफोन आया कि 'लड़केको अचानक किंचित् होश आया है, जब कि लेशमात्र भी आशा नहीं थी । इससे डाक्टरोंको कुछ आशा हुई है; पर निश्चित रूपसे अभी कुछ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि बालक अभी अनर्गल बक रहा है ।' डूबतेको तिनके-का सहारा बहुत होता है । साहबकी यही हालत थी । यह समाचार सुनते ही ऋत्विज लोग भी और अधिक आशान्वित होकर जी-जानसे अनुष्ठान करने लगे । अगले २४ घंटों बाद पुनः टेलीफोनद्वारा साहबको सूचना मिली कि 'लड़के-की हालत पहलेकी अपेक्षा कुछ ठीक है । रुपयेमें दो आना हालत सुधरी है । डाक्टर बराबर आशान्वित होते जा रहे हैं ।' इसी प्रकार उत्तरोत्तर पुत्रकी हालतमें बराबर थोड़ा-थोड़ा सुधार होने लगा ।

इधर अनुष्ठान आरम्भ होते ही साहबका मानसिक बल निरन्तर बढ़ने लगा । उसका मनोबल असाधारण एवं आश्चर्यजनक ढंगसे ऊँचा उठने लगा । जहाँ वह बिल्कुल निराश एवं घबराया-सा रहता था, वहाँ उसमें भी आशाका संचार होने लगा—'व्यापारमें घाटा-नफा रहेगा, इससे क्या डरना; बल्कि स्थितिका सामना करना चाहिये । मेरी कम्पनीकी तो यहाँ तथा सारे अन्ताराष्ट्रीय बाजारमें साख है । शेयर निकालकर पूँजी ली जा सकती है या लोनपर भी पूँजी मिल जायगी । जाँच-पड़तालके बाद तो बीमा कम्पनीसे बीमाके रुपये मिलेंगे ही, फिर चिन्ता क्यों ।' महारुद्रके प्रभावसे उसके आत्मबल एवं विश्वासमें अत्यधिक दृढ़ता आ गयी और जहाँ वह इन विपत्तियोंसे बिल्कुल कर्तव्य-विमूढ और हतोत्साह हो चला था, वहाँ अब पुनः उसमें नवीन शक्तिका संचार हुआ । पाँचवें दिन उसे रातमें दृष्टान्त हुआ कि जैसे कोई जटा-जूटधारी व्याघ्रचर्म एवं कमण्डलु लिये एक संन्यासी महात्मा उससे कह रहा है—'चिन्ता मत करो । बहुत शीघ्र सब कुछ ठीक हो जायगा ।' यह देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ । वह भगवान् शंकरके प्रति पूर्ण

आस्थावान् एवं श्रद्धालु हो गया। उसने भयानक यह सारा परिवर्तन अपनी खास डायरीमें लिखा।

अब तो नित्य प्रतिदिन ही उसके पुत्रके उत्तरोत्तर सुधारके समाचार आने लगे। महायज्ञकी समाप्तिके साथ-साथ ही साहबको खबर मिली कि 'डाक्टरोंने रोगपर काबू पा लिया है और आपका पुत्र अब खतरेसे बाहर है। रुपयेमें आठ आना हालत ठीक है; पर अभी कमजोरी आदिके कारण उसे एक मासतक वहीं अस्पतालमें रहना होगा।' यज्ञकी समाप्ति होते-होते साहबको अपने पुत्रका पत्र भी मिला, जिसमें लिखा था कि उसे गत रात एक विचित्र दृष्टान्त हुआ, जिसमें दिखायी दिया कि एक जटा-जूटधारी महात्मा उसके सिरपर हाथ फेर रहा है और प्रसन्न मुद्रामें कहता है—'चिन्ता मत करो, अब तुम्हारा संकट टल गया है।' यही बात साहबने अपनी डायरीमें दर्ज करते हुए सनातनधर्मकी उदारता, महत्त्व, मर्यादाकी परिपुष्टि की। इधर बीमा कम्पनीसे खबर मिली कि 'दोनों डूबे हुए जहाज पकड़े गये हैं एवं पूर्ण तहकीकात जारी है। माल मिलनेका भी प्रयत्न जारी है। अतः कुल नुकसानका आधा रुपया अविलम्ब शिपरको देनेकी व्यवस्था की गयी है। आधा तहकीकात समाप्त होनेपर मिलेगा।'

अब क्या था। साहबकी कामनाएँ पूर्ण हुईं। उसने दिल खोलकर ऋत्विजोंको दान-दक्षिणादि देकर और हर प्रकारसे संतुष्ट किया। उन ऋत्विजों एवं सभी लोगोंने अब साहबसे आग्रह किया कि जिन भगवान् शंकरकी असीम कृपासे आप संकटमुक्त हुए, उन्हींका इसी चौतरेपर जहाँ महारुद्र-यज्ञ हुआ है एवं पीपलका वृक्ष लगाया गया है, अब एक छोटा-सा मन्दिर बन जाना चाहिये, ताकि यह महत्त्वपूर्ण घटना युग-युगान्तरतक ऐतिहासिक एवं प्रेरणाप्रद बनी रहे। औघड़दानी आशुतोष भगवान् शंकरने आपपर पूर्ण कृपा की है और आपके आराध्यदेव भी अब हो गये हैं।' साहबने इसे बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार किया; क्योंकि वह उनकी दैवी कृपासे पूर्ण प्रभावित था। अब क्या था, लगते हाथ बड़ी धूम-धामसे उसी जगह एक छोटा-सा शिव-मन्दिर बना एवं विधिवत् भगवान् शिव-लिङ्गकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई। उस समयके जलसे एवं जनसमूहमें एक विलक्षण मार्मिक दृश्य उपस्थित हुआ, जब कि सजल नेत्रोंसे साहबने हेड जमादारको बुलाकर माला पहनाते हुए यह कहा—'आजकी इस सारी प्रसन्नताका श्रेय इन्हें ही है। इन्होंने मुझे हर प्रकारसे बचा लिया; नहीं तो, न जाने मैं क्या कर डालता। मैं इनका सदैव कृतज्ञ रहूँगा।' 'यह आप क्या कह रहे हैं'—हेड जमादार बोला। 'करनेवाला प्रभु है। यह शरीर तो निमित्तमात्र है।' यह कहते-कहते प्रसन्नतासे उसके भी नेत्र भर आये। उपस्थित सज्जनोंने देखा कि दोनों ही महानुभावोंके अश्रुपात हो रहे हैं। अपूर्व दृश्य था। अब और अधिक कहने सुननेकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी थी। साहब गद्गद हो जमादार-को निहार रहा था और जमादार मालिकको। आज भी कलकत्ता शेयरबाजारके निकट स्थित वह भगवान् शिवका देवालय असंख्य-असंख्य जनताकी श्रद्धा-भक्ति-भावनाका प्रतीक बना हुआ है। आज भी वह अपनी आपबीती सुनाकर लोगोंको सत्प्रेरणा दे रहा है।

—बल्लभदास बिन्नानी 'ब्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

(३)

गँवार लड़की कैसे सुसभ्य बनी

(डाक्टर दम्पतिका आदर्श व्यवहार)

भरौंचमें डाक्टर नटवरलाल एम्० पारीख और उनकी धर्मपत्नी शान्ता बहिनके जीवनकी एक विशिष्टता है। वे मानते हैं कि प्रभुके सिरजे हुए सब एक समान हैं।

जन-सेवामें प्रभु-सेवा है, इस सिद्धान्तको यथाशक्य जीवनमें उतारनेवाली इस आदर्श दम्पतिके यहाँ धनु नामकी एक दस वर्षकी गड़ेरियेकी लड़की घरके काम-काजके लिये रहती थी। धनु बासन माँजती, कपड़े धोती, बच्चोंको सँभालती—सारांश यह कि डाक्टरके घरका सारा काम-काज करती थी। सबको समान दृष्टिसे देखनेवाले डाक्टर दम्पति उस लड़कीको अपनी सगी लड़कीके समान मानते थे। घरके सभी लोग उसके प्रति स्नेह रखते थे।

धनु गड़ेरियाकी लड़की थी। उस घरमें काम-काजके लिये जब आयी, तब वह दूसरी गड़ेरियाकी लड़कियोंके समान गँवार थी। कपड़ा कैसे पहनना चाहिये, स्वच्छ कैसे रहना चाहिये, विवेकसे कैसे बर्तना चाहिये—इसका उसे जरा भी ज्ञान न था।

परंतु उस डाक्टर दम्पति और उनमें भी खासकर शान्ता बहिनने उसे संस्कारी बनानेका प्रयत्न शुरू किया। फलतः घरके संस्कार और स्वच्छ वातावरणका उसके ऊपर

प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे धनुकी रात्रि-पाठशालामें पढ़ाई भी शुरू हो गयी।

अन्तमें धनु बिल्कुल बदल गयी और इन संस्कारोंके रंगमें रँग गयी। बाहरी आदमियोंको तो ऐसा लगता था कि वह धनु डाक्टरकी ही लड़की है। दिन-पर-दिन बीतने लगे। धनु नवयुवती और विवाहके योग्य हो गयी। गड़ेरियोंमें उस समय बचपनमें ही विवाह हो जाता था। धनुकी सगाई बचपनमें ही सजोद नामक गाँवमें एक गड़ेरियेके लड़केके साथ हो गयी थी।

वह गड़ेरियाका लड़का एक किसानके घर नौकरी करता। जिस किसानके यहाँ वह लड़का नौकरी करता था, उसकी तबीयत खराब हुई और उसी डाक्टरकी दवा उसने शुरू कर दी, जिसके घर धनु नौकरी करती थी। दवासे फायदा होने लगा। बीमारी बिल्कुल दूर हो गयी, तब उस रोगीने डाक्टरके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए एक बातका स्पष्टीकरण किया। उसने डाक्टरको यह बताया कि उनके घर जो लड़की काम करती है, उसकी सगाई उसके घर नौकरी करनेवाले लड़केके साथ हो चुकी है। परंतु उसे ऐसा लगता है कि 'इन दोनोंके बीच जमीन-आसमानका अन्तर है। कहाँ आपके यहाँ काम करनेवाली लड़कीके संस्कार और कहाँ यह उजड्ड और अज्ञानी लड़का! इन दोनोंमें कोई मेल सम्भव नहीं।'

बात भी बिल्कुल सच्ची थी। अन्तमें किसानके कहनेसे वह लड़का ३००) रुपये देकर सगाई तोड़नेपर राजी हो गया। उसे ३००) रुपये देकर डाक्टरने सगाई तुड़वा दी।

लड़की अवस्थापन्न हो गयी थी और विवाहके योग्य थी। इस कारण डाक्टरकी इच्छा हुई कि उसका विवाह किसी गड़ेरियेके साथ कर दें। वरके लिये खोज होने लगी। इसी बीच सूरतके निवासी और पनामामें रहनेवाले कालीदास नानालाल नामक अहीर युवकने सगाईकी माँग करते हुए डाक्टरके पास पत्र भेजा।

डाक्टर-दम्पति विवाहको एक महत्त्वपूर्ण संस्कार मानते थे। इसलिये इसमें खूब सावधानी रखनी चाहिये, ऐसा समझकर उन्होंने उस लड़केको उत्तर दिया कि 'तुम अङ्कलेश्वर आओ, लड़कीको देखो और तुम्हारा मन माने तथा दोनोंको जँचे तो विवाहकी ग्रन्थिसे दोनोंको जोड़ा जा सकता है।'

अमेरिकासे अहीरके उस लड़केने डाक्टरको पत्रद्वारा सूचित किया कि 'सूरतमें मेरी माँ रहती है। मेरी माँ लड़कीको देखेगी और पसंद कर लेगी तो मेरी भी पसंदगी हो जायगी।' इस पत्रका डाक्टर दम्पतिके ऊपर अच्छा असर पड़ा। उनको ऐसा लगा कि अमेरिकामें पनामा-जैसे शहरमें रहनेपर भी जिसे अपनी माँके प्रति इतना प्रेम है, ऐसी श्रद्धा है, जरूर वह लड़का संस्कारी होगा।

लड़केकी माँ अङ्कलेश्वर आयी और लड़कीको देखते ही ब्याहकी स्वीकृति दे दी। डाक्टर दम्पति विवाहको बहुत ही महत्त्वकी दृष्टिसे देखते थे, इसलिये उन्होंने फिर उस लड़केको अमेरिका पत्र लिखकर उसकी माँकी स्वीकृतिकी सूचना दी और उसे स्वयं आकर देख लेनेके लिये लिखा।

अन्तमें अमेरिकासे वह अहीरका लड़का आया। दोनोंमें बातें हुई और दोनोंकी सम्मतिसे विवाह हुआ।

डाक्टर दम्पति पागल हरनाथपर अचल श्रद्धा रखते थे। इस कारण धनु भी पागल हरनाथके ऊपर अचल श्रद्धा रखती थी। विवाह हो जानेके बाद धनुको पता लगा कि अमेरिकामें रहनेवाले जिस लड़केके साथ उसका विवाह हुआ, उस लड़केने भी एक रात स्वप्नमें देखा कि पागल हरनाथ प्रकट हुए हैं और कहते हैं कि 'भारतमें रहनेवाली इस लड़कीके साथ ब्याह कर, तेरा वैवाहिक जीवन सफल होगा।'

यह बात सुनकर धनुकी हरनाथके प्रति श्रद्धा और भी बढ़ गयी। पूर्ण शास्त्रोक्त विधिसे विवाह हुआ। डाक्टर नटवरलाल पारीख और श्रीमती शान्ता बहिनने विवाहोत्सव ऐसे समारोहसे किया मानो उनकी अपनी लड़की ब्याही जाती हो। लड़केके तथा लड़कीके माँ-बाप और कुटुम्बके लोग भी बड़ी उमंगसे विवाहमें सम्मिलित हुए। ब्याहके बाद लड़का अमेरिका चला गया और कुछ समय बाद वह लड़की भी अमेरिका गयी।

आज उस अहीरका परिवार सब प्रकारसे सुखी है, धन भी काफी कमाता है। घरमें मोटर है। उनके चार बालक हैं और चारों ही पढ़ रहे हैं। आज भी अमेरिकासे धनुके पत्र डाक्टर नटवरलाल पारीख और शान्ता बहिनके पास आते हैं। धनका सदुपयोग भी धनु खूब करती है। अभी-अभी भरौंचमें पागल हरनाथके मन्दिरका उद्घाटन हुआ है और उसका बहुत-सा खर्च धनुने वहन किया है।

धनु डाक्टर दम्पतिको अपने माता-पिता-जैसे ही मानती है। डाक्टर दम्पति भी धनुको अपनी पुत्री-जैसी मानते हैं।

अङ्कलेश्वरमें डाक्टरके घर वासन माँजती और घरका काम-काज करती हुई एक गड़ेरियाकी लड़की संस्कारके रंगमें रँगकर अमेरिकामें सुखी जीवन बिता रही है।

शान्ता बहिनके ये शब्द मेरे कानमें सदा गूँज रहे हैं कि 'मानव चाहे जिस जातिमें जन्म ले, तथापि उसमें संस्कारका बीजारोपण हो सकता है।'

—'पटेल काका'

(मगनलाल माधवदास पटेल)

(४)

भिखारीकी ईमानदारी

लगभग एक वर्ष पहलेकी बात है। हमारे पड़ोसमें एक मुकुन्द नामका ब्राह्मण रहता था। उसके संतान नहीं थी। वह सुबह-शाम झोली लेकर घर-घर भीख माँगकर अपना गुजारा करता था। घरमें अकेला ही रहता था।

एक दिन वह गाँवसे दूर एक अरहटपर स्नान करने जा रहा था। वापस आते समय उसने देखा—रास्तेमें एक छोटी-सी कपड़ेकी पोटली पड़ी है। उसने उसको उठा लिया और चलते-चलते खोला। उसमें एक हजार रुपये नगद तथा कुछ रेजगारी थी। रुपये देखकर एक बार तो उसे बड़ी खुशी हुई। वह खुशी-खुशी पोटली लिये घर आया। सोचने लगा कि मुझे कितना धन मिला है, अब तो मैं आरामसे अपना जीवन बिताऊँगा। परंतु दूसरे ही क्षण उसकी अन्तरात्माने उसको सावधान किया—जिसका यह पैसा है, उसको ही वापस मिलना चाहिये। उसकी आत्माने उसको एकदम जाग्रत् कर दिया। वह जिस रास्तेसे आया था, उसीसे लौट चला और एक गाँवमें पहुँचा। वहाँ जाकर वह सरपंचसे मिला। उसने सारे गाँवमें यह सूचना करवा दी कि एक बूढ़े व्यक्तिको एक हजार रुपये तथा कुछ रेजगारीकी एक पोटली मिली है। जिस किसीकी हो, वह ईमानदारीसे आकर निशानी बताकर ले जाय। इसी बीचमें एक युवक रोता हुआ आया और बोला—'मेरे रुपये वहाँ गिर गये थे। मैं अपना एक बैल मेलेमें बेचकर आ रहा था। रास्तेमें रुपयोंकी पोटली गिर गयी।' मुकुन्दको दया आ गयी और उसने ईमानदारीसे रुपये उसको दे दिये। वह अत्यन्त आप्यायित हो गया। इसके बदलेमें उसने मुकुन्दको एक सौ रुपये देने चाहे, परंतु उसने साफ इन्कार कर दिया। बहुत आग्रह करनेपर उसके घर भोजन करना स्वीकार किया। घटना बिल्कुल सत्य है।

—श्यामसुन्दर 'जाला'

देवलीकला—पाली

(५)

दाँत-दाढ़के दर्दकी अनुभूत रामबाण दवा

नियमित रूपसे मंजन न करने, अन्नादिका कुछ अंश अंदर रह जाने, शरीरमें खूनके अंदर 'फास्फोरस' एवं 'कैलशियम'की कमी और अधिकतर गरम-गरम खाद्य पदार्थ खाने-पीनेके तुरंत बाद ठंडा जल पीनेके फलस्वरूप दाँत-दाढ़के मसूढ़ोंमें सूजन पैदा हो जाती है, दाँत सड़ जाते हैं तथा दाढ़में सूराख भी हो जाता है, जिसको 'कानी' होना कहते हैं।

दाढ़का दर्द 'केरिज' (Caries) बड़ा ही भयानक वेदनाजनक होता है। रोगीको चैन नहीं लेने देता। इस दर्दमें रोगी न खा-पी सकता है और न नींद ही ले पाता है।

दवा-प्रयोग—इस दवाका अंग्रेजी नाम है कैलशियम लेक्टास। चूने-जैसा सफेद रंगका पाउडर होता है। ऐलोपैथिक चिकित्सा-केन्द्रोंपर एवं अंग्रेजी दवा बेचनेवालोंके यहाँ मिल सकती है। सस्ता भी है। दो तोले ले आइये। ४ माशा करीब एक बारमें लेकर दिनमें ३ बार मंजनकी तरह जहाँ दर्द हो तथा दर्दके इर्द-गिर्द अँगुलीसे मलिये। यदि कानी (केरिज) हो तो ऐसी कोशिश कीजिये जिसमें दवाका कुछ अंश सूराखमें चला जाय। यह मलनेकी क्रिया पाँच मिनट तक करते रहिये। दवासे सना थूक या लार गलेमें न उतारकर बाहर ही थूक देना चाहिये। भूलसे अंदर चला भी जाय तो हानि भी नहीं होती। एक दिनमें ही आराम मिल जायगा, फिर भी दूसरे दिन इस क्रियाको फिर कीजिये। मैंने बहुत-से रोगियोंपर इसका प्रयोग किया है और शतप्रति सफलता पायी है।

कोई सज्जन यह कार्य लोभ-लालचवश न करें। केवल 'पर हित सरिस धरम नहिं भाई'के सिद्धान्तपर ही सेवाके भावसे करें। किसी भाईको यदि दवा कहीं न मिले तो उनके लिखनेपर मैं बिना मूल्य भेज सकूँगा।

—मदनलाल कावरा 'सकन्धपाल' प० पन्द०

पो०—छापरेल, त० कोटड़ी निवासी हमीरगढ़के

जिला—भीलवाड़ा (राजस्थान)

बिहारका भयानक अकाल

बिहारके अधिकांशमें अन्न-जलका भयानक अभाव है। मनुष्यों और गौओंकी बड़ी दुर्दशा है। उत्तरप्रदेश तथा राजस्थानमें भी कई स्थानोंमें अकाल है। बिहारमें सरकारने अकाल घोषित कर दिया है, पर मनुष्य और गौकी रक्षाके लिये जैसी व्यवस्था अपेक्षित है, वैसी सरकार अभी नहीं कर पायी है। बिहारमें ईसाई संस्थाएँ इस समय सहायताका बहुत बड़ा कार्य कर रही हैं। स्वाभाविक ही सेवाकार्यके साथ ईसाई-धर्मका भी विस्तार होगा ही। बहुत योग्य, सेवापरायण ईसाई सज्जन वहाँ गये हुए हैं, धनकी प्रचुरता है और सेवा करना जानते हैं। अतएव उनकी सेवा लोगोंको प्रिय भी हो रही है। सरकार, जनता तथा देशवासी पर्याप्त सेवा न कर सकें और उन लोगोंको उनके ईसाई होनेके नाते सेवा करनेसे रोका जाय, यह सम्भव नहीं और उचित भी नहीं। असलमें तो हम भारतीयोंका यह कर्तव्य है कि किसी भी प्रदेशकी पीड़ाको अपनी ही पीड़ा मानकर—सब लोग उस पीड़ाको दूर करनेमें जी-जानसे लग जायँ।

हमारी प्रधान मन्त्री श्रीइन्दिराजी प्रयत्न कर रही हैं, विभिन्न संस्थाओंकी ओरसे भी सराहनीय सेवा-कार्य हो रहा है। सरकार भी कर रही है; परंतु जितना आवश्यक है, उसकी दृष्टिसे अभी बहुत कुछ त्रुटि है। पशुरक्षाका प्रश्न भी बिहारमें बहुत बड़ा है। ऐसा समाचार मिला है—साठ लाख गौएँ बिहारमें सूखा-पीड़ित हैं। वहाँ सहस्रों गौएँ मर गयी हैं। काफी मात्रामें गौओं-का निर्यात हो रहा है, जो सरकारको तुरंत बंद कर देना चाहिये। 'बम्बई जीवदयामण्डल', 'बिहार राज्य-गोशाला-पिंजरापोल संघ', 'महाराष्ट्र राज्य-गोशाला-पिंजरा-पोल संघ', 'केन्द्रीय रिलीफ कमेटी बम्बई' तथा 'बिहार रिलीफ कमेटी' के संरक्षण और तत्त्वावधानमें एक लाख गोवंशकी रक्षाका प्रयत्न किया जा रहा है। प्रसिद्ध पुराने गोसेवक प्राणिमित्र श्रीधर्मलालजी महान् प्रयत्न कर रहे हैं। 'भारत-गो-सेवक-समाज' के मन्त्री श्रीजयन्ती-लालजी मानकर, जिन्होंने जीवनभर अकाल-सेवाका कार्य किया है और जो अत्यन्त सदय-हृदय होनेके साथ ही व्यवस्था करनेमें अत्यन्त निपुण हैं, वहाँ गये हुए हैं। 'गोरक्षा-महाभियान-समिति' के श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा भी वहाँ गये थे और महाभियान-समितिकी ओरसे भी वहाँ चारा-केन्द्र खोलनेपर विचार हो रहा है।

गीताप्रेस-सेवा-दलकी ओरसे भी कुछ सेवा-कार्य हो रहा है। उससे भी लोगोंको यत्किंचित् सहारा मिल रहा है, पर वह अभी नगण्य है। काम बढ़ानेका विचार हो रहा है। हमारे बिना माँगे ही इधर कुछ सहायता बाहरसे आयी है, पर वह अभी बहुत कम है।

बिहारमें मनुष्य और गोवंश दोनोंकी ही बड़ी दयनीय दशा है। हमारे पास जो सहायता आयेगी, उसमें मानव-सेवाका कार्य तो 'गीताप्रेस-सेवादल'के द्वारा होगा और जो गोवंशकी सेवाके लिये सहायता भेजेंगे, वह सेवाकार्य श्रीमानकरजी तथा शर्माजीकी देखरेखमें किया जायगा।

उपासना-अङ्क

'कल्याण' का आगामी विशेषाङ्क

यह निश्चय किया गया है कि निम्नलिखित सूचीके अनुसार तथा और भी उपयोगी सामग्रीका संग्रह हो गया तो 'कल्याण' का आगामी विशेषाङ्क 'उपासना-अङ्क' के नामसे प्रकाशित किया जायगा। इस अङ्कमें उपासनाके महत्त्वपूर्ण विविध विषयोंपर अनुभवी साधकों तथा विद्वान् शास्त्रज्ञ पुरुषोंके लेखोंका तथा अन्यान्य उपयोगी सामग्रीका प्रकाशन होगा। हमारी विनीत प्रार्थना है कि उपासना-तत्त्वके ज्ञाता, अनुभवी तथा साधक पुरुष एवं इन विषयोंके मर्मज्ञ विद्वान् लेख भेजनेकी कृपा करें। लेख शुद्ध स्पष्ट अक्षरोंमें, कागजकी एक पीठपर कुछ हासिया छोड़कर लिखा जाय। संस्कृत मन्त्रों-श्लोकोंका हिंदी अनुवाद भी रहे। हिंदीके अतिरिक्त संस्कृत, बँगला, मराठी, गुजराती और अंगरेजीमें भी लेख भेज सकते हैं। लेख बहुत बड़ा न हो—यथाशक्य पुनरुक्तियोंसे रहित हो। लेख अगस्तके अन्ततक अवश्य कृपा करके भेज दें।

लेखके प्रकाशित होनेका निश्चय लेख देखनेके पश्चात् ही हो सकेगा। विषय-सूची नीचे प्रकाशित है।

विनीत—सम्पादक 'कल्याण'

उपासना-विशेषाङ्ककी प्रस्तावित विषय-सूची

१—वैदिक उपासना।
 (१) उद्गीथविद्या।
 (२) उपकोशलविद्या।
 (३) पञ्चाग्निविद्या।
 (४) संवर्गविद्या।
 (५) मधुविद्या।
 (६) शाण्डिल्यविद्या।
 (७) पर्यङ्कविद्या।
 (८) अग्निविद्या—इत्यादि।
२—आगमके अनुसार वरिवस्या (उपासना) रहस्य।
३—कामकला-विज्ञान (इस प्रसङ्गमें अग्नितत्त्व, सोमतत्त्व तथा सूर्यतत्त्वका स्वरूप-निरूपण)।
४—कामकला-तत्त्वमें सृष्टि तथा संहारका रहस्य निहित है।
५—हार्द-कला।
६—अहंग्रह-उपासना।
७—प्रतीक-उपासना।
८—श्रीचक्र-लेखन-प्रक्रिया (बाहरसे भीतरकी ओर और भीतरसे बाहरकी ओर)।
९—श्रीचक्र-उपासना।
१०—श्रीचक्रके अवयव और उनका रहस्य।
११—अन्य देवताओंके चक्र-लेखन-प्रकार।
१२—अङ्क-यन्त्र तथा मन्त्र-यन्त्रका पार्थक्य (उपासनामें)।
१३—मार्ग-भेद—अनुपाय और शाम्भव उपाय, शाक्त उपाय, आणव उपाय।
१४—अधिकार-भेदसे मार्गभेदकी व्यवस्था।
१५—प्रतिमार्गका सविस्तर वर्णन।
१६—ज्ञानकी सप्तभूमियाँ।
१७—अज्ञानकी सप्तभूमियाँ।
१८—अद्वैत-साधनमें उपासना-मार्ग तथा विचार-मार्गका परस्पर भेद।
१९—अमनस्क योग।
२०—समना शक्तिसे उन्मना शक्तिमें प्रवेश।
२१—शाम्भवी अथवा भैरवी मुद्राका स्वरूप और इसकी साधन-प्रणाली।
२२—शाम्भवी मुद्राका उद्देश्य।
२३—चतुर्विध वाक्तत्त्वका स्वरूप-निरूपण और वाक्-साधना।
२४—वैखरी भूमिसे पश्यन्तीपर्यन्त अथवा परापर्यन्त जानेका विवरण।
२५—जप-विज्ञान।
२६—मन्त्रके दोष तथा दोषक्षालन।
२७—अजपा-रहस्य।
२८—आरोप-साधन और इसकी प्रक्रिया।
२९—त्राटकमुद्राका रहस्य।
३०—शुद्ध विद्याका उदय और उसका क्रम-विकास।
३१—शुद्ध विद्यामें ज्ञान तथा क्रियाका परस्पर सम्बन्ध।
३२—अष्टाङ्गयोग-साधना।
३३—षडङ्गयोग-साधना।
३४—बौद्ध-षडङ्गयोग तथा आगम-षडङ्गयोगका भेद।

१०१—पञ्चदशी, षोडशी तथा सप्तदशी विद्याका स्वरूप ।
१०२—बिन्दु तथा विसर्ग-तत्त्वका रहस्य ।
१०३—षट्चक्रोंका रहस्य ।
१०४—चक्रभेदका तात्पर्य ।
१०५—गुप्त चक्रोंका विचार ।
१०६—महाशून्य तथा भ्रमरगुहाका रहस्य ।
१०७—हठयोगका यथार्थ स्वरूप-निरूपण ।
१०८—वायुक्रिया तथा चित्तक्रियाका परस्पर सम्बन्ध ।
१०९—प्राणायामके भेद तथा विज्ञान ।
११०—नादानुसंधानका रहस्य ।
१११—अमरोली, वज्रोली तथा सहजोलीका रहस्य ।
११२—बौद्धसाधनमें आनापान-स्मृतिका रहस्य ।
११३—कुण्डलिनी-तत्त्व ।
११४—परा कुण्डलिनी, शक्ति-कुण्डलिनी तथा प्राण-कुण्डलिनीका तत्त्व ।
११५—ऊर्ध्वकुण्डलिनी तथा अधःकुण्डलिनीका भेद ।
११६—आसनके भेद तथा प्रति आसनका फलगत वैशिष्ट्य ।
११७—चित्तका परिकर्म—मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा ।
११८—बिन्दु, नाद तथा कला-तत्त्व ।
११९—भवाङ्ग-स्रोत तथा वीथिचित्तका विवरण ।
१२०—बौद्ध-साधनमें परिग्रह-निमित्त, उद्ग्रह-निमित्तादि प्रवृत्तियोंका स्वरूप-निरूपण ।
१२१—कुशल-मूलका क्रम-विकास ।
१२२—अग्रधर्म-उत्पत्तिका हेतु ।
१२३—निर्वेधभागीय तथा मोक्षभागीय संस्कारका विचार ।
१२४—स्पन्दविज्ञानका रहस्य ।
१२५—खेचरी, गोचरी, दिक्चरी और भूचरी शक्तियोंका स्वरूप तथा कार्य ।
१२६—ब्रह्मचर्यसाधनका रहस्य ।
१२७—बिन्दु-सिद्धिकी प्रक्रिया ।
१२८—ऊर्ध्वरेता होनेका उपाय ।
१२९—कैवल्यगत भेद ।
१३०—विशुद्ध विज्ञान-कैवल्य, अशुद्ध विज्ञान-कैवल्य तथा प्रलय-कैवल्यका भेद ।
१३१—परा-त्रिंशिका-रहस्य ।
१३२—मातृका-तत्त्व तथा मातृका-चक्र ।
१३३—पूर्व कौल तथा उत्तर कौलमें भेद ।
१३४—अन्तर्याग तथा बहिर्याग ।
१३५—पुत्रक-दीक्षा ।
१३६—पाशुपत साधना ।
१३७—न्यासविज्ञान ।
१३८—षोढान्यासकी महिमा ।
१३९—मातृकान्यास तथा मालिनीन्यास ।
१४०—वीरशैव-सम्प्रदायकी साधना ।
१४१—रसेश्वर-सम्प्रदायकी साधना ।
१४२—उन्मीलन-समाधि तथा निमीलन-समाधि ।
१४३—सविकल्प समाधि तथा निर्विकल्प समाधि ।
१४४—सम्प्रज्ञात समाधि तथा असम्प्रज्ञात समाधि ।
१४५—क्रममार्गका विज्ञान ।
१४६—लिङ्गोद्धार-रहस्य ।
१४७—सद्यःसमुत्क्रमण-दीक्षा ।
१४८—ज्ञान-कर्म-समुच्चय—सम समुच्चय तथा विषम समुच्चय ।
१४९—उत्क्रमण-विज्ञान तथा 'दशम द्वार'का रहस्य ।
१५०—काय-साधना—वायुमूलक, मन्त्रमूलक तथा द्रव्यमूलक ।
१५१—'ॐ'का रहस्य ।
१५२—मृतोद्धरण-दीक्षा ।
१५३—एकायन मार्ग, शरणागति तथा प्रपत्ति ।
१५४—दिव्यकरण ।
१५५—'केवल' कुम्भककी महिमा ।
१५६—मानस-पूजा ।
१५७—कालचक्र-रहस्य ।
१५८—कालसंकर्षिणी विद्या ।
१५९—परा-प्रासाद तथा प्रासाद-पराका भेद ।
१६०—शव-साधना ।
१६१—पुरश्चरण-रहस्य ।
१६२—स्वाध्याय और योगका परस्पर सम्बन्ध ।
१६३—मन्त्रार्थविज्ञान तथा मन्त्रचैतन्य ।
१६४—मन्त्रके विभिन्न अर्थोंका विवरण ।
१६५—मन्त्रकी सुषुप्ति तथा जागरण ।
१६६—मन्त्र-साधनामें कुल्लूका सेतु, महासेतु, निर्वाण प्रवृत्तिका रहस्य ।
१६७—माला-जप ।
१६८—मालाके भेद ।
१६९—वर्णमाला, करमाला इत्यादि ।
१७०—देवता-भेदसे माला-भेदका रहस्य ।
१७१—योनि-मुद्रा-रहस्य ।
१७२—आसन-तत्त्व और आसनके प्रकार-भेद ।
१७३—उपासनामें आवाहन, संस्थापन, संनिधापन, संनिरोध, सम्मुखीकरण, अवगुण्ठन प्रभृतिका रहस्य ।
१७४—सकलीकरण-तत्त्व ।
१७५—परमीकरण ।

१७६–श्रद्धा-उपासनामें सगुण तथा निर्गुणका भेद ।
१७७–हठयोगके षट्कर्म—नेति, धौति, वस्ति, त्राटक, नौलि इत्यादि ।
१७८–कपालभाति ।
१७९–प्रदक्षिण-तत्त्व परिक्रमा-रहस्य ।
१८०–प्राण-प्रतिष्ठा ।
१८१–मन्त्रसंहिताओंमें उपासना-तत्त्व ।
१८२–ब्राह्मणों तथा आरण्यकोंमें उपासना ।
१८३–उपनिषदोंमें उपासना ।
१८४–स्मृतियोंमें उपासना ।
१८५–पुराणोंमें उपासना ।
१८६–वैष्णवतन्त्रोंमें उपासना ।
१८७–शैवतन्त्रोंमें उपासना ।
१८८–शाक्ततन्त्रोंमें उपासना ।
१८९–जैनधर्ममें उपासना ।
१९०–बौद्धधर्ममें उपासना ।
१९१–हीनयानी उपासना ।
१९२–महायानी उपासना ।
१९३–वज्रयानी उपासना ।
१९४–नाथपंथमें उपासना ।
१९५–सिद्धपन्थमें उपासना ।
१९६–उपासनामें योग ।
१९७–उपासना तथा ज्ञानमार्ग ।
१९८–उपासनामें भक्तितत्त्व ।
१९९–कर्मयोग और उपासना ।
२००–उपासनामें मन्त्रोंका उपयोग ।
२०१–उपासनामें अधिकारविचार ।
२०२–उपासनामें शिष्यतत्त्व ।
२०३–उपासनामें गुरुतत्त्व ।
२०४–गुरुका स्वरूप, योग्यता तथा उपयोग ।
२०५–श्रीमद्भागवतमें उपासना-रूप ।
२०६–शैवपुराणोंमें उपासना ।
२०७–देवीभागवतमें उपासना ।
२०८–पद्मपुराणमें वैष्णवी उपासना ।
२०९–वैदिकदर्शनमें उपासना ।
२१०–उपासनाका स्वरूप भिन्न-भिन्न दर्शनोंके संदर्भमें ।
२११–श्रीवैष्णवमतमें उपासना ।
२१२–निम्बार्कमतमें उपासना ।
२१३–मध्वमतमें उपासना ।
२१४–चैतन्यमतमें उपासना ।
२१५–वल्लभमतमें उपासना ।
२१६–पारसीमतमें उपासना ।
२१७–यहूदीमतमें उपासना ।
२१८–ईसाईमतमें उपासना ।
२१९–इस्लाममतमें उपासना ।
२२०–सूफीमतमें उपासना ।
२२१–कुरानमें मान्य उपासना ।
२२२–बाइबलमें मान्य उपासना ।
२२३–उपासना तथा चौरासी सिद्ध ।
२२४–उपासक-सम्प्रदाय ।
(१) वैष्णव-सम्प्रदाय ।
(२) शैव-सम्प्रदाय ।
(३) शाक्त-सम्प्रदाय ।
(४) गाणपत्य-सम्प्रदाय ।
(५) सौर-सम्प्रदाय ।
२२५–पञ्चदेवोपासना ।
२२६–श्रीरामोपासना एवं श्रीकृष्णोपासना ।
२२७–विभिन्न देवी-देवताओंकी उपासना ।
२२८–विभिन्न भगवदवतारोंकी उपासना—नृसिंहोपासना, हयग्रीवोपासना, दत्तात्रेयोपासना आदि ।
२२९–नाना आचार्योंकी उपासना—उनका स्वरूप तथा विवेचन।
२३०–तुलसीदासकी उपासना ।
२३१–सूरदासकी उपासना ।
२३२–निर्गुणमतके संतोंकी उपासना ।
२३३–व्रजभक्तोंकी उपासना ।
२३४–उपासनासे लौकिक लाभ ।
२३५–उपासनासे लाभके सच्चे दृष्टान्त ।
२३६–उपासनासे पारमार्थिक लाभ ।
२३७–ईश्वरोपासना और देवोपासना ।
२३८–नवग्रह-उपासना ।
२३९–उपासनासे सिद्धि ।
२४०–उपासनाकी आवश्यकता ।
२४१–उपास्य देवताओंके ध्यान एवं मन्त्रादि ।
२४२–दिवंगत सिद्ध उपासकोंके उपासना-सम्बन्धी अनुभव तथा चरित्र ।
२४३–तन्त्र, भक्ति तथा उपासनाके नामपर दम्भ-पाखण्डका प्रसार ।

ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके २४१ लेखोंका एक संग्र[illegible]

(प्रत्येक भागमें सर्वथा स्वतन्त्र अलग-अलग लेख हैं)

इन लेखोंमें लौकिक, पारलौकिक, व्यावहारिक, पारमार्थिक, नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मि[illegible] सर्वतोमुखी उन्नति करानेमें सहायक एवं सभी वर्ण-आश्रम, स्त्री-पुरुष और बालक-बालिकाओंके कामकी यथेष्ट सामग्री है। वस्तुतः ये लेख परमात्मतत्त्वका यथार्थ ज्ञान करानेके लिये 'चिन्तामणि'के समान हैं।
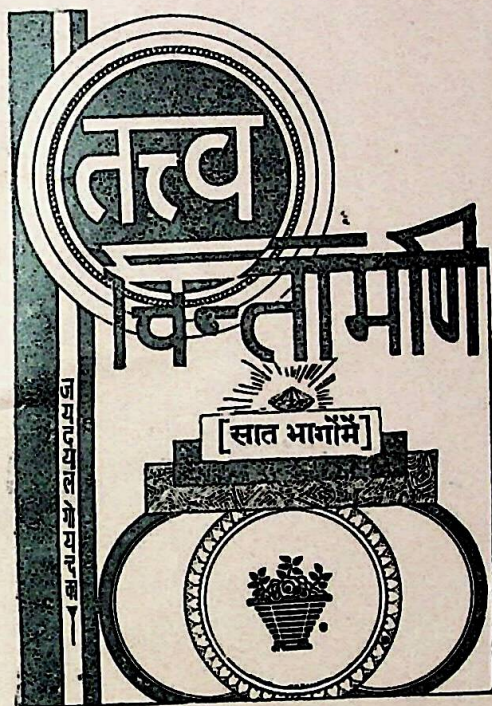
भाग १–में २९ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ३५२, चित्र तिरंगा २, मूल्य ··· .७५

भाग २–में ४८ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५९२, चित्र तिरंगा १, मूल्य··· १.००

भाग ३–में ३३ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४२४, चित्र तिरंगे २, मूल्य··· .८०

भाग ४–में ३१ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५२८, चित्र तिरंगे ५, मूल्य··· .९५

भाग ५–में ३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४९६, चित्र तिरंगे ४, मूल्य··· .९५

भाग ६–में ३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४५६, चित्र तिरंगा १, मूल्य··· १.००

भाग ७–में ३२ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५२०, चित्र तिरंगा १, मूल्य··· १.२५

इन सातों भागोंमें कुल लेख २४१, पृष्ठ ३३६८, चित्र तिरंगे १६, सातोंका मूल्य ६.७० डाकखर्च ३.३५ कुल १०.०५ मात्र।

भाग १ से ५ तकके छोटे आकारके गुटका संस्करण भी मिलते हैं।

भाग १–में २९ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ४४८, चित्र तिरंगा २, सजिल्द ०.६०
भाग २–में ४८ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ७५२, चित्र तिरंगा १, ,, ०.७०
भाग ३–में ३३ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ५६०, चित्र तिरंगा १, ,, ०.६०
भाग ४–में ३१ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ६८४, चित्र तिरंगा १, ,, ०.७५
भाग ५–में ३४ लेखोंका संग्रह, पृष्ठ ६२१, चित्र तिरंगा १, ,, ०.७०

पाँचों भागोंकी कुल पृष्ठ-संख्या ३०६५, तिरंगे चित्र ६, पाँचोंका अलग-अलग जिल्दमें सजिल्द मूल्य ३.३५ डाकखर्च २.१५ कुल ५.५०।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

एक नयी पुस्तक ! ... प्रकाशित हो गयी !!

हिंदू-विवाहका पवित्र स्वरूप तथा महत्त्व

(आशीर्वादसहित)

[देशके कुछ चुने हुए मनीषियोंकी लेखनीसे]

विचार और मननके लिये तथा शुभ विवाह-संस्कारके मङ्गल अवसरपर वितरणके लिये। आकार डिमाई आठ पेजी, पृष्ठ-संख्या १७८, श्रीराधा-माधवके विवाहका सुन्दर बहुरंगा चित्र, मूल्य एक रुपया। डाक-खर्च .८५।

प्रस्तुत पुस्तकमें नारीकी महत्ता, नारीके पवित्र आदर्श त्याग, नारीके कुसुम-कोमल हृदय तथा उसकी वज्रोपम कठिन कर्तव्यनिष्ठारूप तपस्या, विवाह-संस्कारकी महत्ता और आवश्यकता, विवाह-संस्कारके पवित्र भाव, विवाह-संस्कारके प्रधान मन्त्रोंका सारांश एवं नारी तथा पुरुष दोनोंके लिये अवश्य पालनीय धर्म एवं कर्तव्य आदिके सम्बन्धमें अमृतरसमय सदुपदेश तथा दुर्लभ मङ्गलाशिषके रूपमें आदर्श महत्-वाक्योंका संग्रह किया गया है, जो बहुत सुन्दर तथा पढ़ने-समझने और जीवनमें उतारने योग्य हैं।

देशके विभिन्न क्षेत्रोंके, विभिन्न रुचि तथा कर्तव्यनिष्ठावाले आदर्श व्यक्तियोंके द्वारा उनकी अपनी-अपनी पृथक् भाषा-शैलीमें लिखे होनेके कारण इन आशीर्वाक्योंका सौन्दर्य तथा महत्त्व और भी बढ़ गया है। ये महत्-वाक्य प्रत्येक परिस्थितिमें कर्तव्यका बोध करानेवाले, अन्धकारमें निर्मल ज्योतिका दर्शन करानेवाले, सदा सुन्दर निर्विघ्न पथ-प्रदर्शन करनेवाले एवं पवित्र सुख-शान्तिमय गृहस्थ-जीवनके निर्माणमें परम सहायक हैं।

विवाहके समय कन्या-वरको इस पुस्तिकाका मर्म समझनेके साथ ही दोनों परिवारोंके सभी आदरणीय पुरुषों और महिलाओंमें इसका वितरण करना भी बहुत लाभदायक हो सकता है।

छपाई-सफाई तथा मुखपृष्ठ सुन्दर एवं आकर्षक हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

'कल्याण'के पुराने प्राप्य विशेषाङ्क (डाकखर्च सबमें हमारा है)

१—मानवता-अङ्क—पृष्ठ-सं० ७०४, मानवताकी प्रेरणा देनेवाले सुन्दर चित्र—बहुरंगे ३९, दुरंगा १, एकरंगे १०१ और रेखाचित्र ३९, मूल्य रु० ७.५० पैसे।

२—संक्षिप्तशिवपुराणाङ्क—प्रसिद्ध शिवपुराणका संक्षिप्त सार-रूप है। इसमें ७०४ पृष्ठोंकी ठोस पाठ्य-सामग्री है, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, सादा १२ तथा रेखाचित्र १३८, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्दका ८.७५।

३—संक्षिप्तब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क—इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विविध दिव्य लीलाओंका बड़ा ही रोचक वर्णन है। पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र १७, दोरंगा १, इकरंगे ६, रेखाचित्र १२०, मूल्य रु० ७.५०, सजिल्द रु० ८.७५।

४—धर्माङ्क—धर्म-सम्बन्धी विवेचनाओं, सुरुचिपूर्ण कथाओं, सरस सूक्तियों तथा रोचक निबन्धोंसे युक्त। पृष्ठ-सं० ७००, बहुरंगे चित्र १४, दोरंगा १, सादे चित्र ४ तथा रेखाचित्र ८१, सजिल्द (कपड़ेकी जिल्द) मूल्य रु० ८.७५।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)